* श्री वीतरागायनमः *

श्रीपाल

लेखक—

श्री कन्हैयालाल जैन

प्रकाशक—

मंत्री—श्री आत्मानद जैन सभा

अम्बाला शहर ।

वीर संवत् २४५६ | आत्म सं० ३४ | मूल्य ॥) | विक्रम सं० १९८६ | ईस्वी सन् १९३०

सत्यव्रत शर्मा द्वारा, शान्ति प्रेस, आगरा में मुद्रित ।
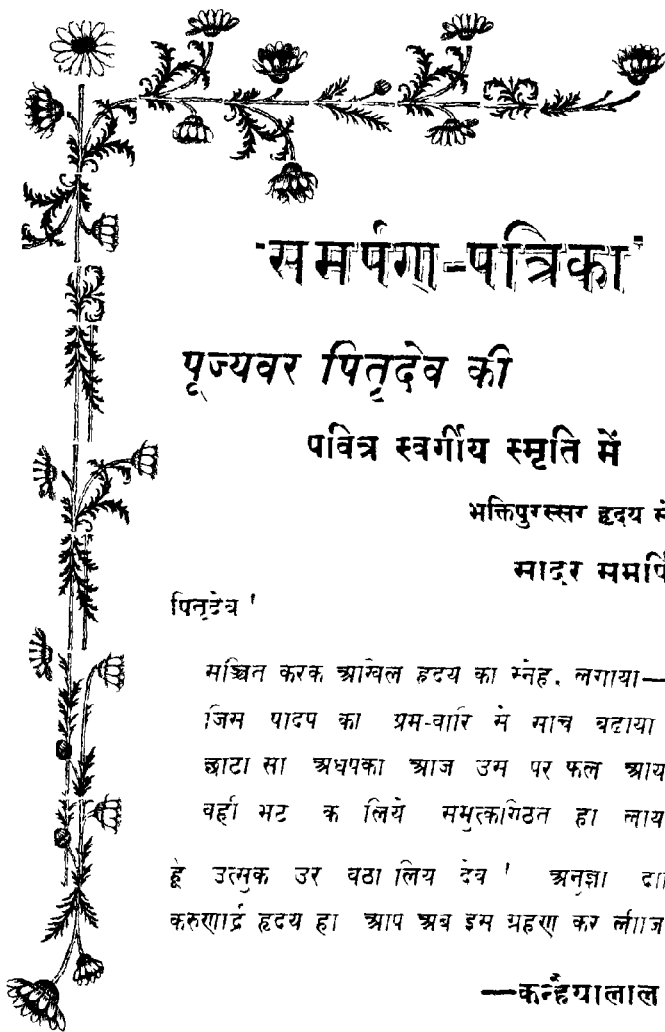
समर्पण-पत्रिका

पूज्यवर पितृदेव की

पवित्र स्वर्गीय स्मृति में

भक्तिपुरस्सर हृदय से

सादर समर्पित—

पितृदेव!

सञ्चित करके अखिल हृदय का स्नेह, लगाया—
जिस पादप को प्रेम-वारि से सींच बढ़ाया।
छोटा सा अधपका आज उस पर फल आया
वही भेंट के लिये समुत्कण्ठित हो लाया।

हूँ उत्सुक उर बैठा लिये देव! अनुज्ञा दीजिए
करुणार्द्र हृदय हो आप अब इसे ग्रहण कर लीजिए।

—कन्हैयालाल।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक हमारी पाँच वर्ष पहले की रचना है। तब से अब तक कुछ हमारे प्रमादवश, कुछ प्रकाशन की अव्यवस्था के कारण, जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे यह आज प्रकाशित हो रही है। "कल का अनुभव आज अधूरा जान पड़ता है" इस उक्ति के अनुसार इस मे आज मुझे भी अनेक त्रुटियाँ दीख पडती है। विद्वान लोगो को तो इस मे और भी अधिक त्रुटियाँ दृष्टि पडेगी, वे उदारभाव से हमे इसकी सूचना देने की कृपा करे जिससे यदि कभी इसे द्वितीय सस्करण का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उनका ध्यान रक्खा जा सके।

कुछ समय हुआ तब कलकत्ते के बा० काशीनाथ जैन ने 'श्रीपाल-चरित्र' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की है। उससे पहले यह पुस्तक प्रकाशको को अर्पित की जा चुकी थी, परन्तु कुछ आवश्यक कारणो से यह शीघ्र प्रकाशित न हो सकी और इससे पहले 'श्रीपाल' का दूसरा रूप साहित्य समाज के समक्ष आगया।

परन्तु फिर भी इसका प्रकाशन नहीं रोका गया। इसका कारण है। वह बिल्कुल प्राचीन पौराणिक कथानक की शैली मे लिखी गई और यह सर्वथा आधुनिक औपन्यासिक ढंग पर। इसके अतिरिक्त भाषा, भाव, घटना क्रम आदि का अन्तर जो महानुभाव दोनो पुस्तको का अवलोकन करेंगे उनकी समझ मे सरलतापूर्वक आजायगा। विशेष विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

हिन्दी साहित्य के धुरधर लेखक, जैन सिद्धान्तो के सूक्ष्म निरीक्षक जैनतत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता लाला कन्नोमलजी एम० ए० ने इसकी भूमिका लिख कर पूर्ण परिचय देने की कृपा की है।

जिस आदर्श को लेकर यह प्राचीन उपाख्यान नवीनता के चोले में साहित्य संसार के सामने प्रकट हुआ है उसकी विशद् विवेचना करदी गई है। हम उस आदर्श के पालन मे कहाँ तक सफल-काम हुए हैं इसका विज्ञ पाठक स्वयं अनुमान करले।

पुस्तक प्रकाशन में विलम्ब होने के दो विशेष कारण हैं। पहले यह पुस्तक देहली निवासी बाबू श्रीचन्द जैन मन्त्री 'श्री श्वेताम्बर जैन, नवयुवक मण्डल' देहली को प्रकाशनार्थ दी गई थी। कुछ समय तक उनके पास रही परन्तु पश्चात् 'श्री आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला' के प्रकाशको ने उनसे प्रकाशनार्थ लेली, कुछ समय इसी परिवर्तन-प्रबन्ध मे लग गया। दूसरा कारण चित्रो की तैयारी से सम्बन्ध रखता है। इसमे जितने चित्र प्रकाशित किये गये हैं वे सब फाइन आर्ट प्रिंटिङ्ग काटेज इलाहाबाद' द्वारा नये तैयार कराये गये है। यद्यपि उक्त कार्यालय ने चित्र तैयार कराने मे यथाशक्ति शीघ्रता की परन्तु फिर भी दूसरे के हाथ का कार्य होने से यथेष्ट विलम्ब हो गया। इन्हीं कारणो से पुस्तक प्रकाशन मे अप्रत्याशित विलम्ब हो गया।

पुस्तक के प्रकाशको को हम धन्यवाद दिये बिना नही रह सकते जिन्होने इसे सुन्दर और सुपाठ्य रूप मे छपवाने का प्रबन्ध किया है।

अन्त मे उस करुणा वरुणालय भगवान को धन्यवाद देते हैं जिसकी असीम कृपा से हम पुस्तक को पाठको के समक्ष रखने में सफल-प्रयत्न हो सके।

(स्नेह-सदन)
कसूर
ता० १५—१—३०

जैनत्व का क्षुद्र सेवक—
कन्हैयालाल

जो कथाएं और आख्यायिकाएं पौराणिक चारित्राधार पर हमारे नवयुवको के चारित्रसंगठन मे उपयोगी और सहायताप्रद हो, उनका प्रचार सर्वथा उपयुक्त और सदैव वाञ्छनीय है। जैन पुराणो मे राजा श्रीपाल की कथा इसी प्रकार की है। लाला कन्हैयालाल जैन कस्तला ने इसी प्राचीन कथा के आधार पर "श्रीपाल" की रचना शुद्ध, सुन्दर एव सुवाच्य हिन्दी गद्य मे नवीन प्रणाली से की है। मैंने इसकी हस्त लिखित कापी आद्योपान्त पढ़ी। पुस्तक बड़ी रोचक, शिक्षाप्रद और उपयोगी है। इसका प्रचार जैन स्कूलो, पाठशालाओ और गुरुकुलो में होना परमोचित है। यो तो पुस्तक मे अनेक शिक्षाप्रद और रोचक बाते है पर वह निम्नलिखित विषयो पर विशेष रूप से प्रकाश डालती है —

१—कर्म सिद्धान्त।
२—भ्रेत्यभाव।
३—पतिव्रता धर्म।
४—मंत्र तंत्र सिद्धि।
५—सच्चरित्र और दुष्टचरित्र।
६—योगबल।

१—कर्म सिद्धान्त

जीव जैसा करता है वैसा फल पाता है। कर्मों का फल एक ही जन्म में समाप्त नहीं हो जाता है, वह अनेक जन्मों तक चलता है। पूर्व जन्मों के कर्म फलों से इस जन्म की व्यवस्था होती है और इस जन्म और पूर्व जन्म के बाकी बचे कर्मफलों से

आगामी जन्म का ढांचा बनता है। कर्मों का चक्र निरन्तर चलता रहता है। जो जीव निर्जरा की प्रचण्ड अग्नि द्वारा कर्मों को भस्म कर देता है वही निर्वाण प्राप्त करता है। शास्त्रोक्त रीति से कर्म तीन प्रकार के हैं अर्थात् सञ्चित, क्रियमाण और भावी। जब सञ्चित कर्मों का आरम्भ हो जाता है तब उनका नाम क्रियमाण कर्म होता है और जिनका आरम्भ नही होवे वे भावी कर्म कहलाते हैं। किसी ने हत्या, चोरी और परस्त्रीहरण तीन अपराध किये। ये तीनो उसके सचित कर्म हो गये। पुलिस को इनमे से एक अपराध अर्थात् चोरी का पता लगा। उसने अपराधी को पकड़ा। अब समझो कि सचित कर्म के फल का आरम्भ हुआ। इसलिये यह क्रियमाण कर्म हो गया। इस अपराध (चोरी) के निर्णय होने पर अपराधी को दण्ड मिला जो उसे भोगना ही पडा, परन्तु अभी दो अपराधो के फल भोगने रह गये है। जिस अपराध का फल आरम्भ हो गया उसे तो वह मनुष्य रोक ही नही सकता है, परन्तु जो आने वाले कर्म फल है अर्थात् हत्या और परस्त्री हरण अपराधो के फल उनके रोकने की चेष्टा कर सकता है। अच्छे कर्म करने और शुद्ध वृत्ति रखने से मनुष्य आने वाले फल भोगो से बच सकता है अथवा उनके कषाय को कम कर सकता है। आगे अच्छे फल हों, ऐसी चेष्टा करना आगामी सञ्चित कर्म फल भोगो को रोकना और आगे के लिये अच्छे कर्म सञ्चित करना, मनुष्य की स्वतंत्र बुद्धि पराकाष्टा के भीतर है। मनुष्य बिल्कुल ही परतंत्र नही है। आचार शास्त्र की दृष्टि से कर्म तीन प्रकार के है–सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। जो नियत कर्म, कर्मफल की इच्छा, राग, द्वेष और मोह छोड़ कर किया जाता है, वह सात्त्विक कर्म है। जो कर्म कामना, अहंकार अथवा अतिप्रयास से किया जाता है वह राजसिक कर्म है। जो कर्म मोह से किया जाता है जिसमे यह विचार न रहे कि यह दूसरों को हानिकारक है और इसका अनुचित फल

होगा और अपने सामर्थ्य से भी बाहर है, वह तामसिक कर्म है। सात्त्विक कर्म श्रेष्ठ है। कर्मों का चक्कर रजोगुण से उठता है, जो काम को उत्पन्न करता है। काम सब को मोह मे डालता है और मोह कर्मबन्धन की जड़ है। इस कथा मे कर्मसिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण दिया है।

२—प्रेत्यभाव

पहले ही कह आये हैं कि कर्मों का फल एक जन्म मे समाप्त नहीं हो सकता है, इसलिये जीव का जन्म बार बार होना अनिवार्य है। यह दार्शनिक सिद्धान्त है और सब प्रामाणिक शास्त्रो मे प्रतिपादित है। जीव का फिर जन्म लेना प्रेत्यभाव कहलाता है और इसके महत्त्व का वर्णन दार्शनिक रीति से गौतम न्याय दर्शन मे किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक मे पूर्वजन्म के कर्मों का फल दूसरे जन्म मे होना राजा श्रीपाल के चरित्र मे भली भांति दिखाया है।

३—पातिव्रताधर्म

प्राच्य देशो मे विशेषत भारतवर्ष मे स्त्री के लिये पातिव्रत धर्म श्रेष्ठ कहा है। हिन्दू जाति के इतिहास मे ऐसी धर्मपरायण स्त्रियो की संख्या बहुत है। सीता, सावित्री, दमयन्ती, अनुसुइया इत्यादि देवियो के दिव्य चरित्र आज भी हिन्दू जाति की अमूल्य सम्पत्ति हैं। राजा श्रीपाल को रानियो के दिव्य चारित्र मे इसी पातिव्रत धर्म की उज्ज्वल ज्योति देदीप्यमान हो रही है। बालिकाओ और महिलाओ के लिये ये रानिया आदर्श रूप हैं।

४—मंत्रसिद्धि

भूमण्डल पर कोई सभ्य देश ऐसा नहीं है जहां प्राचीन काल में तंत्रमंत्र का प्रचार न रहा हो। भारतवर्ष तो इस विषय मे जगद्गुरु ही था। यहा मंत्रों के द्वारा सभी कुछ साध्य था। अब इस विद्या का लोप जड़वाद के प्रभाव से हो गया है।

तथापि कभी कभी मंत्र-तंत्र के चमत्कार का हाल सुनने में आ जाता है। यदि प्रस्तुत पुस्तक मे सिद्ध चक्र मत्र की महिमा कही गई है तो वह सर्वथा गप्प नही है। सनातनधर्म के पुराणो मे मंत्र-तंत्र सम्बन्धी चमत्कारों का वर्णन बहुत स्थलों मे है।

५ -सच्चरित्र और दुष्टचरित्र

राजा श्रीपाल का सच्चरित्र और धवलसेठ का दुष्टचरित्र जो प्रस्तुत पुस्तक मे सविस्तार वर्णित हैं, पूर्ण शिक्षाप्रद हैं और चारित्रसगठन में बड़े महत्त्व के हैं। नवयुवको को सन्मार्ग पर जाने के लिये और पापपथ को त्याग करने के लिये इनसे बढ़ कर क्या उदाहरण हो सकते है।

६ —योगबल

योगशक्तियो की जितनी महिमा कही जाय थोड़ी है। पातञ्जल योग दर्शन मे योग सिद्धियो के चमत्कार वर्णित हैं। उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है यह भी लिखा है। इस पुस्तक मे राजर्षि अजितसेन का योगबल से अवधिज्ञान प्राप्त करना और अपने सब पाप कर्मों को योगाग्नि से भस्म कर डालना आश्चर्य की बात नही है। हिन्दू-बौद्ध-जैन सभी धर्मों मे योग शक्तियो का महत्त्व कहा गया है और सहस्रों उदाहरण ऐसे है जिनमे इनके चमत्कार पूर्णतया प्रकाशित है। कभी कभी इस समय भी ऐसे योगियो का हाल सुनने मे आता है जिन्होने अपने तपोबल से भौतिक जगत् पर विजय प्राप्त करली है। प्रस्तुत पुस्तक से धार्मिक, सामाजिक एव नैतिक शिक्षा ही नही मिलती है, बल्कि इसके रोचक कथा पढने से ख़ूब मनोरजन भी होता है।

यदि लेखक महाशय अपनी भूमिका मे राजा श्रीपाल के चरित्र पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश भी डाल देते तो इसका गौरव और भी बढ़ जाता।

—कन्नोमल एम० ए०

"श्रीपाल"

'मंगल-कामना'

हम प्रस्तुत पुस्तक के पुनीत विषय को प्रारम्भ करने के प्रथम उस परम पूज्य परमेश्वर के चरणाम्बुजो मे सादर प्रणाम करते है जिसके लिये राजा रङ्क एक समान है, जिसकी राग द्वेष हीन दृष्टि सारे ससार पर एक समान है, जिसके करुणाकर धनवान और धनहीन पर एक समान है।

× × × ×

(१)

(विकास)

तिमिराच्छादित शून्य रात्रि मे एक स्त्री अपनी गोद मे एक पञ्च वर्षीय बालक को लिये चुपचाप पैर बढाये चली जारही है। गहन वन का वह निर्जन दृश्य अन्धकार के कारण बडा भयंकर प्रतीत होता है। चारो ओर वायु की 'सन् सन्' ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है। तारो की क्षुद्र चमक निबिड़ तम तिमिर मे विलीन होरही है। ऐसी भयानक रात्रि मे यह कौन दुःखिनी स्त्री है जो ऐसी भयानक निर्जन अटवी मे कण्टकाकीर्ण मार्ग मे नगे पैर अकेली जारही है। उसके पैरो में कांटे लगने से रक्त प्रवाह होरहा है पर उस ओर ध्यान न देकर वह बढ़ी चली जाती है। मानो वह किसी भीषण शत्रु के हाथ से निकल कर भागी है। बार बार वह अपने शिशु को संभालती है, प्यार

करती है, मानो अपने प्राण देकर भी वह उसके प्राणो को बचाना चाहती है। इसी प्रकार वह दबे पैर चलते चलते बहुत दूर निकल गई यहां तक कि प्राची दिशा मे उषा की आभा झलकने लगी। अरुणोदय हुआ, और कुछ ही काल पश्चात् भगवान मरीचिमाली अपनी सहस्रश भुजाओ के द्वारा तिमिर शत्रु का नाश करते हुए प्रगट हुए, और पृथ्वी पर अन्धकार का नाम भी न रहा।

पाठको ! उस समय तो अधकार होने से स्त्री की वेषभूषा दृष्टिगत नही होती थी पर अब देखिये साफ़ देख पड़ता है कि स्त्री किसी उच्च घराने की है। उसका सुकोमल शरीर, उसकी वस्त्रभूषा कहे देती है कि वह अवश्य किसी राज्य घराने से सम्बन्ध रखती है। वह प्रत्येक वस्तु को देखकर चौक पड़ती है इस से प्रतीत होता है वह कभी अन्त पुरो से बाहर नही निकली। उसकी माग मे सिधूर नही है इससे प्रत्यक्ष प्रगट होरहा है कि वह अपने सौभाग्य से हाथ धो बैठी है। यद्यपि इस समय वह सब प्रकार श्रान्त, क्लान्त और दीन अवस्था मे है पर वह अवश्य किसी राजा की रानी रही है इस मे स'देह नही। अस्तु

सूर्योदय होने पर वह स्त्री बहुत घबराने लगी और बार बार चौंक कर पीछे को देखने लगी। इतने मे सामने कुछ धूल उड़ती दीख पड़ी। उसे देखकर वह स्त्री बेहद घबरा गई और इधर उधर छिपने का यत्न करने लगी पर जहा वह स्त्री इस समय चल रही थी वहा कोई गोपनीय स्थान नहीं था। अतः वह कहीं छिप न सकी। शनै. शनै. वह धूल और बढ़ती गई और उस स्त्री ने देखा कि मनुष्यों का एक बड़ा झुण्ड उसकी ओर को चला आरहा है। जब वह झुण्ड समीप आया

श्रीपाल

" हे कुष्टिश्रेष्ठ ! मैं विपत्ति की मारी अनाथ
स्त्री हूँ   रक्षा करो"

पृ० सं० ३

तब जान पड़ा कि वह सातसौ कुष्टियो का एक समूह है जो निरुद्देश इधर उधर घूमता फिरता है। उनमे कोई घोड़े पर कोई खच्चर पर कोई ऊट पर और कोई कोई गधे पर सवार था। बहुत से पैदल भी चल रहे थे। किसी का हाथ गल गया था। किसी के शरीर मे दाग पड गये थे उनमें से पीव बह रही थी। किसी के पैर गल गये थे। टाग सड़ गई थी। किसी के सिर मे कुष्ट से घाव हो रहे थे। कोई श्वेत कुष्ट से पीड़ित था। किसी के नख गल गये थे। किसी की अंगुली सड़ गई थी। उनकी ऐसी अवस्था देख कर स्त्री को बहुत घृणा हुई पर हृदय मे सोचने लगी कि शत्रु के हाथ मे पड़कर प्राण देने से यह कहीं अच्छा होगा कि मैं इनके साथ छिप कर रहूँ, और अपने तथा इस बालक के प्राण की रक्षा करूँ। फिर सौभाग्य से यदि कभी सुअवसर प्राप्त हुआ तो औषधोपचार द्वारा कुष्ट रोग के दूर करने का प्रयत्न करूंगी पर प्राण न रहने से तो किसी प्रकार की आशा नही रह जाती। यह सोच कर और इस सुअवसर को दैवयोग से मिला जानकर वह उनके मुखिया के सामने गई और हाथ जोड़ कर कहने लगी।

'हे कुष्टिश्रेष्ठ ! मैं विपत्ति की मारी अनाथ स्त्री हूं। और यह मेरा बालक है कृपाकर तुम मुझे शरण देकर रक्षा करो।

कु०—देवी तुम घबराओ नहीं और अपना सब वृत्तान्त सत्य सत्य मुझसे कहो मैं तुम्हे शक्ति भर बचाने का यत्न करूंगा।

स्त्री०—मैं सन्देह करती हूं कि शायद तुम्हे मेरी बात का विश्वास नहीं पर मैं सत्य ही कहूंगी। ध्यान देकर सुनो अंग देश मे चम्पापुरी नाम की एक विशाल नगरी है। वहां शत्रुओं के लिये सिंह समान-अपने रथ में सिंह जोड़ने वाला-वीर 'सिंह-रथ'

नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम कमलप्रभा था। वह सब प्रकार सुखी सम्पन्न एव वैभवशाली होने पर भी अपुत्र था। अनेक प्रयत्न करने पर उसके एक सर्व गुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ। सर्व सुलक्षणसयुत होने से तथा अनन्त श्री का अधिपति होने के कारण उसका नाम श्रीपाल रक्खा गया। उसके जन्मोत्सव के उपलक्ष मे अनेक रस रंग हुए। जब वह बालक पांच वर्ष का हुआ तब राजा का अचानक उदरशूल से देहावसान हो गया। अखिल राज्य मे शोक छागया। कमलप्रभा रानी ने भी बहुत विलाप किया। पश्चात् मन्त्री मतिसागर ने उस पचवर्षीय बालक का ही राज्याभिषेक किया और स्वयं राज्य-कार्य्य का व्यवस्थित रीति से सञ्चालन करने लगा। इसी प्रकार कुछ काल बीता। एक दिन रात्रि काल मे मतिसागर रानी के समीप घबराया हुआ आया और कहने लगा कि रानी साहब आप कुवर साहब को लेकर अभी कही भाग उाइये क्योकि श्रीपाल कुवर के चाचा साहब ससैन्य नगरी पर चढ आये हैं और कु वर को बन्दी बना कर स्वय राज्य पर अधिकार करना चाहते है। आप शीघ्र ही कु वर को ले जाइये क्योकि यदि कु वर साहब जीवित रहे तो अनेक राज्यो के अधीश्वर होगे। अस्तु, रानी कु वर को लेकर रातो रात भागी और वही कमलप्रभा अब तुम्हारे सामने बालक श्रीपाल को लिये खडी है। मुझे डर है कि शत्रु के सवार मेरी तलाश मे आरहे होगे अतएव कृपाकर मुझे कही जल्दी छिपाओ"।

कुष्टियो के मुखिया ने यह सब सुन कर रानी को बड़ी सान्त्वना दी और सम्मान पूर्वक रानी को एक घोड़ा सवारी के लिए दिया। रानी श्रीपाल को गोद मे लेकर और कुष्टियो के भयानक

रोग स्पर्श से बचाने के लिए अच्छी तरह वस्त्राच्छादित करके घोडे पर बैठ गई।

कुष्टियो ने रानी को लेकर प्रस्थान किया, पर अभी अधिक दूर नही निकल पाये थे कि एक ओर से बडी धूल उडती दीख पडी और कुछ ही काल मे अश्वारोही सैनिको के एक झुंड ने उन्हे चहुँ ओर से घेर लिया। उनमे से एक ने आगे बढ कर उन्हे ठहरने की आज्ञा दी।

कुष्टियो के ठहरने पर उस अग्रणी ने कहा—"क्या तुमने इस मार्ग पर किसी स्त्री को एक बालक लिये जाते देखा है, यदि देखा है तो कहो वह किस ओर गई है"।

कुष्टियो ने कहा "नही महाराज हमने किसी स्त्री आदि को नही देखा है"।

अग्रणी—"मालूम होता है तुम सत्य नही बताते वह स्त्री अवश्य इसी मार्ग से गई है। सम्भव है कि तुमने उसे छिपाया भी हो और इसी कारण शायद न बताते हो। यदि सत्य न कहोगे तो हम तुम्हारी तलाशी लेकर उसे निकालेगे"।

कुष्टि—अरे महाराज हम तो कुष्टी है हमे किसी स्त्री से वा उसके कारण सत्यासत्य भाषण से क्या लाभ? यदि आप नही मानते है तो सहर्ष हम लोगो मे स्त्री को खोजिये पर यदि आप को भी हमारी वायुस्पर्श से यह रोग लग जाय तो फिर हमे दोष न दीजियेगा। और यह भी स्मरण रखियेगा कि फिर आपको भी हमारे समान मारा मारा फिरना पड़ेगा"।

उस अश्वारोही ने विचारा नौकरी करते हैं तो क्या इसलिये थोडी कि अकारण ही अपने प्राण देते फिरे। इतनी खोज पछाड़

पर भी यदि सफल न हों तो दैवेच्छा। और उसने सब सवारो को आगे बढ़ने की आज्ञा दी।

इस प्रकार उन सवारो से पीछा छुडा अब यह कुष्टियो का दल इधर उधर भ्रमण करने लगा।

पाठक! रानी को श्रीपाल कुवर समेत इनकी सरक्षकता में छोड़ कर आप हमारे साथ आइये और एक नवीन स्थान की शोभा देखिये।

(२)

"भाग्य-परीक्षा"

एक बडा भारी दरबार लगा है। ऊचे ऊचे विशालकाय स्तम्भो पर विविध रङ्गरञ्जित सुनहरी झालरो से सज्जित छत स्थिर है। स्तम्भो पर विविध प्रकार की मीनाकारी और पच्ची का काम किया गया है। उन पर लाल, हरे, गुलाबी, पीले अनेक रङ्गों के परदे बधे हुए है जिन पर कारचोबी का काम बडे परिश्रम से किया गया है। दीवारे स्वर्ण खचित मीनाकारी से विभूषित की गई है। दरबार के ऊपरी भाग मे जो सगमरमर की खिडकियां अन्त पुर से सम्बन्ध रखने वाली महिलाओ को दरबार की शोभा देखने के लिये बनाई गई हैं उन पर बड़ी बारीकी से जाली का काम बनाया गया है। मानो चतुर शिल्पी ने गृह-निर्माण-विद्या-कुशलता यही समाप्त करदी है। नीचे फर्श पर मोटे मोटे ऊनी और मखमली कालीन बिछे है और ठीक सामने एक रत्नजटित सिहासन रक्खा है। सिहासन पर एक सुन्दर सुगठित देह वाला वीर पुरुष स्थित है। सिहासन के दाहिनी और बाई ओर अर्द्धचन्द्राकार स्वर्ण और चांदी की कुरसिया रक्खी है। जिन पर बडे बड़े वीर महानुभाव बैठे हैं,

उनमे कुछ वृद्ध हैं कुछ युवा। सब अपने अपने योग्य आसन पर विराजमान हैं। ऊपर की खिड़किया भी खाली नहीं, हैं उनमे सौन्दर्य का एक बड़ा ढेर, मणिनूपुरो की मधुर ध्वनि और मधुर मन्द वार्तालाप मिश्रित हास्य प्रवाह उपस्थित है। पाठक यदि आप को इस दरबार का परिचय सुनने की इच्छा हो तो सुनिये—

मालव देशस्थ प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी के सर्व विश्रुत प्रजा-पाल राजा का यह दरबार लगा है। सामने रत्नजटित सिहासन पर जो वीर पुरुष विराजमान है वही महाराज प्रजापाल उज्जयिनीपति है। महाराज प्रजापाल के दो रानिये सौभाग्य सुन्दरी और रूप सुन्दरी नाम की हैं। उनमे से सौभाग्य सुन्दरी जैनेतर धर्म तथा रूपसुन्दरी जैनधर्म के पालन करने वाली हैं। उनके क्रमश सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी (मदनसुन्दरी) नाम की दो कन्याए पूर्ण चन्द्रकला सी सौन्दर्यमयी सर्व सद्गुण सयुता और चौसठ कला-कुशला हैं? वे अपने अपने शिक्षको से सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर चुकी है। अस्तु यह उन्ही की परीक्षा के लिए ऐसे ठाट बाट से दरबार लगा है। कहना न होगा कि परीक्षा दिवस की सूचना पहले ही होने से इस दरबार मे अनेक राजा और राजकुवर लोग पधारे है। इधर उधर के आसनो पर राज्य मन्त्री, पुरोहित, कुमारियो के शिक्षक और बाहर से आने वाले राजा महाराजा आदि स्थित है। एक बात और जान लेनी चाहिये कि मैनासुन्दरी को जैन-धर्म-शास्त्र विषयक और सुर सुन्दरी को जैनेतर शास्त्रो की शिक्षा दी गई थी इसका कारण उनकी माताओ का रुचि वैभिन्य था। अस्तु।

जब दरबार का सब साज सम्पूर्ण हो चुका और सब अपने अपने आसनो पर आकर बैठ गये यहा तक कि सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी की माताए भी ऊपरी भाग मे अपने स्थानो पर

आकर बैठ गईं तब दोनो कुमारिया बुलाई गईं। देवाङ्गनाओ सा रूप धारण किये दोनो कन्याओ ने आकर महाराज प्रजापाल को नमस्कार किया। राजा ने आशीर्वाद दिया और दोनो को प्यार करके बैठाया। 'सारी सभा उनकी रूपमाधुरी और विनय-शीलता पर मुग्ध हो गई। अब महाराज ने दोनो बालिकाओ के शिक्षकों—सुबुद्धि जैन-सिद्धान्त-शिक्षक और शिवभूति जैनेतर धर्म-शास्त्र-शिक्षक--को बालिकाओ के बुलाने का संकेत किया। उन्होने खडे होकर सुर सुन्दरी और मैना सुन्दरी को महाराज के सामने बुलाया और उनसे कहा —

"पुत्रियो ! तुम्हे इतने काल से शिक्षा दी जारही है आज उसकी परीक्षा का दिन है। अत जो कुछ महाराज प्रश्न करे उसका यथोचित रीति से उत्तर दो" ?

तब राजा ने अनेक शास्त्र और उनके अङ्ग उपाङ्ग विषयक एव रहस्य मय प्रश्न किये पर सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी सबका सतोष-जनक और बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर देती गईं जिससे सारी सभा, राजा और शिक्षक आदि सब सतुष्ट होकर उनकी प्रशसा करने लगे। दोनो माताए भी हर्ष से अग मे फूली न समाई, तब राजा ने भी सतुष्ट चित्त होकर कहा पुत्रियो मै तुम से अत्यन्त प्रसन्न हू अब मै कुछ प्रश्न तुम से अलग अलग करू गा उनके उत्तर दो।

दोनो विदुषी बालिकाओ ने यह आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य की। तब राजा ने सुर सुन्दरी से पूछा कि

"जीवन लक्षण कौन ? काम की कौन प्रिया है ?
उत्तम सुरभित सुमन प्रकृति ने कौन किया है ?
क्या कुमारिका चाहे हो नव विवाह जिसका ?
एक वाक्य मे दो संक्षिप्त समुत्तर इसका" ?

" देवाङ्गनाओं का रूप धारण किए दोनों कन्याओं ने आकर
महाराज प्रजापाल को नमस्कार किया "

पृ० सं० ८

The Fine Art Printing Cottage Allahabad

तब सुरसुन्दरी ने जरा गम्भीर होकर उत्तर दिया।

'सासरे जाय"

महाराज ने कहा—इस की विस्तार पूर्वक व्याख्या करो।

सुर०—जीवन का लक्षण-श्वास (सास) है

कामकी प्रिया-रति (रे) † है।

उत्तम सुरभित फूल-जुही (जाय)* का है।

तथा नव विवाहिता कन्या 'सासरे जाय' यही चाहती है।

इस उत्तर को सुनकर सारी सभा धन्य धन्य कह उठी। राजा रानी तथा गुरुजन आदि भी परम पुलकित हुए। राजा ने परम संतुष्ट होकर सुरसुन्दरी का सस्नेह मस्तक चुम्बन किया और बैठ जाने का आदेश दिया। तब उन्होंने मयनासुन्दरी को लक्ष्य करके कहा—कहो वह क्या वस्तु है—

"आद्याक्षर विन जो जग जीवन, जग भक्षक मध्याक्षर हीन ?
अन्त्याक्षर से हीन जगत प्रिय, नित नयनो मे लखे प्रवीण ?

मयनासुन्दरी ने कहा—'काजल' है।

सविस्तार व्याख्या पूछने पर उसने कहा—

"का" हटाने से "जल" रहता है जो जीव का जीवन है।

'ज" हटाने से "काल" रह जाता है जो जगत-संहारक है।

"ल" हटाने से "काज" रह जाता है जो सबको प्यारा लगता है।

इस समुचित उत्तर पर सभा में मयनासुन्दरी की बड़ी प्रशंसा हुई। राजा रानी अतीव हर्षित हुए।

---

† रे = रति का सक्षिप्त वा सूचक अक्षर माना गया है।

* जाय = जुही शब्द अपभ्रंश है—ले०

तब राजा ने दोनों कुमारियो को अपने सम्मुख बुलवाया और उनसे कहा—

"मैं एक समस्या तुम्हे देता हू। उस पर अपनी अपनी 'पूर्ति' अलग कर के दो।

समस्या है—"पुण्य पामिये एह"

सुरसुन्दरी ने उक्त समस्या की पूर्ति इस प्रकार की।

"सुन्दरता, धन, चातुरी, यौवन उत्तम देह ।
इच्छित प्रिय पति सम्मिलन, पुण्य पामिये एह ॥

मयनासुन्दरी ने इस प्रकार पूर्ति की।

"स्थिर मति न्याय सुनीति मे, शील सुनिर्मल देह।
सगति गुरु गुणवात की, पुण्य पामिये एह ॥ *

ये समस्या पूर्तिया सुन कर राजा बडे प्रसन्न हुए। बोले — "पुत्रियो! मै तुम पर परम प्रसन्न हू जो इच्छा हो वर मागो मै सब कुछ देने मे समर्थ हू। राजा को रक और रक को राव बना देना यह मेरे बाए हाथ का खेल है। सारी प्रजा मेरे ही कारण सुख पाती है। जगत मे जिस पर मै सतुष्ट होऊ उसके चरणो पर त्रिलोक की ऋद्धि लुठित हो जाये, जिस पर मै कोप करू उसका सर्वनाश करदू।

सुरसुन्दरी ने कहा—"पिताजी आप सत्य कहते है आप सर्वशक्ति सम्पन्न है। जगत के दो ही प्राणरक्षक हैं, एक "महीपति" दूसरा "मेह"।

---

* इन समस्या पूर्ति के दोहों की सामग्री उपाध्याय श्री विनय विजय जी कृत 'श्रीपालरास' से ली गई है। समयानुकूलता के कारण कुछ उलट फेर कर दी गई है। ले०—।

यह सुन कर सब लोग सुरसुन्दरी की प्रशंसा करने लगे। कोई कोई तो कहने लगे कि सुरसुंदरी जैसी चतुर स्त्री संसार में नही है।

इसी अवसर पर कुरु जागल देशान्तर्गत शंखपुरी नाम की नगरी के राजा दमितारि का पुत्र अरिदमन भी आया हुआ था वह रूप गुण सम्पन्न सुन्दर एव बलिष्ठ युवक था। सुरसुन्दरी उसके रूप गुण पर मोहित हो गई। महाराज प्रजापाल ने वह गुप्त प्रणय ताड़ लिया और सुरसुन्दरी का अरिदमन राजकुमार के साथ पाणिग्रहण कर दिया। इस योग्य जोडे की सब लोग प्रशसा करने लगे।

ऐसे हर्ष एवं आनन्दोत्सव के अवसर पर भी मयनासुन्दरी नीरव रही। उसने किसी प्रकार के हर्ष वा विषाद का भाव प्रगट न किया। यह देख कर राजा बड़े विस्मय मे पडे और मयना-सुन्दरी से बोले—

'पुत्रि! तुम ऐसे सुन्दर अवसर भी मौन क्यो हो? इस सारी सभा म तुम्हारे चातुर्य एवं बुद्धि की तुलना नही है। अत तुम्हारे उदासीन भाव धारण करने का हमे बडा शोच है। तुम्हे जो उचितानुचित प्रतीत हुआ हो वह अवश्य कहो'।

मयना०—'पिताजी इस समय इस सभा मे मेरा कुछ बोलना उचित नही है। क्योकि समय देख कर, उचितानुचित का ध्यान रख कर, और परिस्थिति को विचार कर जो सभा मे नही बोलता वह मूर्ख एवं सभा चातुरी हीन है। यहा जो वार्तालाप का प्रसग छिड़ा है वह मेरे मनोनुकूल नही है इसी कारण मैने कुछ न कह कर मौन रहना ही उचित समझा'।

राजा—नही, हमारी यह इच्छा नही कि हम अपने कार्यों में किसी को सशय उत्पन्न होने का अवसर दे और फिर यह तो

होही नहीं सकता कि जान कर भी उसके संशय निवारण का यत्न न करे। हमारी कृतियो मे जो दोषात्मक एवं समालोचनात्मक है वह निकल जाना चाहिये। मै चाहता हूं कि यही सभा में चाहे स्थिति अनुकूल हो वा प्रतिकूल। पर जो सशय तुम्हारे चित्त में हो, जो त्रुटि तुम्हे खटकती हो, वह तुम अवश्य कहो।

मयना०—पिताजी ! उचित तो यही था कि आप मुझे ऐसे समय कुछ भी कहने के लिये विवश न करते पर आपकी आज्ञा मेरे लिये अनिवार्य्य है। अस्तु, मै इस बात से कदापि सहमत नही कि कोई शक्तिशाली व्यक्ति-चाहे वह राजा हो या राजेश्वर-किसी क्षुद्र मनुष्य का भी त्राता या भाग्य विधाता है। मनुष्य जो सुख दु ख पाते है सो सब अपने कर्मानुसार, जो किसी पर प्यार व द्वेष करता है वह सब पूर्व सस्कार वश ? किसी को भी किमी के सत्वापहरण का वा सत्वप्रदान का वास्तविक अधिकार नही है। यह तो लौकिक लीलाए हैं कि ससार के आप सञ्चालक हैं और ससार आप का अनुगामी। वरन यदि हृदय के नेत्र खोल कर देखिये, अज्ञानान्धकार के परदे को चीर कर देखिये, मिथ्याहकार को दूर करके देखिये और निष्पक्षभाव से, समता भाव से और स्थिर दृष्टि से देखिये तो पाइएगा कि न कोई किमी का आश्रित है न कोई किसी का भाग्यविधाता। न कोई किमी का उद्धार कर सकता है न कोई किसी का सहार कर सकता है। सारी प्रकृति, सारे जीव और ससार की सारी सचराचर सत्ता स्वतन्त्र है। केवल प्रकृति नियति क्रम मे बद्ध है। जो जसा कर्म्म करता है वह वैसा फल पाता है। जो करील बोता है वह कण्टक पाता है जो आमवृक्ष बोता है वह मीठे फल खाता है। सब कहते है कि सूर्य सब स्थलो पर अपने करुणाकरो द्वारा उज्ज्वल ज्योति पहुँचाता है पर उलूक क्यो उसके

आलोक से-प्रासाद से वञ्चित है? उसका दुर्भाग्य। वर्षा का अमृतश्रोत सारी वसुन्धरा को हरित फूल फल फलित, उर्व्वरा, शस्यश्यामला और रत्नप्रसविनी बना देता है पर चातक क्यों उसके रसास्वादन से वञ्चित है? उसका दुष्कर्म। वर्षामृतधारा अनेक प्रयास करके भी चातक को अपना रसाभास नहीं करा सकती पर वही जब स्वाति नक्षत्र आता है तब स्वयं जीवन सुधा बनकर उसके मुख मे पतित होती है। अत स्वयं कोई भी किसी के हानि वा लाभ का उत्तरदायित्व वहन नही कर सकता-हां समय आने पर, पूर्व संस्कार होने पर, कर्म्मोदय का अवसर आने पर सब कुछ बुरा भला और हानि लाभ हो जाता है। आप वा मै अथवा इतरजन तो केवल निमित्त कारण होते हैं। पर घटना तभी घटित होती है जब कार्य कारण सयोग मिल जाता है। अतएव मनुष्य-विशाल प्रकृति के एक क्षुद्र जीव-के लिये यह अभिमान करना कि मै ही सबका त्राता विधाता वा सहारकर्ता हू सर्व्वथा गर्ह्य है। ससार मे जो कुछ होता है यह सब कर्म्मों की विचित्र लीला है। मनुष्य की सामर्थ्य कहा जो इसमे हस्तक्षेप करे। वह केवल उसका आदेश वहन करता है। पिता जी मुझे आशा है कि आप कुपित न होगे क्योकि आपकी आज्ञा पर ही विवश होकर मुझे ये अप्रासागिक और समय-विरुद्ध बाते कहनी पड़ी है।

राजा पुत्री की बाते सुनकर पहले तो स्तम्भित, चकित और किकर्त्तव्य से होगये, पर पीछे वे अपना यह सार्वजनिक अपमान सहन न कर सके और उन्होने कोपान्ध होकर, उचितानुचित का ज्ञान भुलाकर, क्रोध से लड़खड़ाती गिरा से कहा—

"अरे मूर्खा! क्या तेरे हृदय मे इतने काल की शिक्षा मे यहीविष बीजबोया गया था?। क्या ऐसे ही ऊटपटाग उपदेशसुनने के

लिये मैंने तुझे उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान कराई ? क्या जैन-शास्त्र-शिक्षा मे इसी प्रकार माता पिता की अवज्ञा का उपदेश दिया जाता है ? अब मै भी यह देखना चाहता हूं कि तू किस प्रकार कर्म्म द्वारा उन्नत अवस्था को पहुंचाई जाती है ? मैं तुझे ऐसे ही गहनगर्त में डालकर देखूँगा कि तू किस प्रकार उसमे से कर्म्म द्वारा निकाली जाती है ?"

मयना ने कहा—"पिता जी ! किसी को विवश करके उसकी रुचि प्रकाश करानी, और फिर अपने साथ सहमत नहोने पर उसकी शिक्षा को, उसके पठित एवं अध्ययन कृत शास्त्रो को दूषित एवं लाञ्छित करना, यह कहा का न्याय है ? हो सकता है उक्त बातों मे मेरा ही व्यक्तिगत स्वभाव जनित अपराध हो पर इसका अर्थ यह नही कि आप मेरे कारण मेरे अध्ययन किए हुए शास्त्रो वा सिद्धान्तो को दोष दे। एक क्या लाख गर्तों मे गिरा देने पर भी यदि दैव साथ है-अदृष्ट सहायता करता है-तो मैं निकल सकूंगी"।

इस पर सारी सभा मे कानाफूसी होने लगी। चाटुको ने मन्द स्वर से यहां तक कहा कि यह मयना ने अनुचित प्रति-द्वन्द्विता की है यह उसे न कहना चाहिये था। किसी ने कहा वह अभी अनुभवहीन निरी बालिका ही तो है, महाराज को उसके मुँह न लगना चाहिए था। किसी ने कहा इसने अपनी सारी पढ़ी पढाई विद्या पर पानी फेर दिया। पर जो न्याय और नीति का सत्य हृदय से समर्थन करने वाले थे वे या तो मौन रहे या किसी ने किसी के कान मे कह दिया कि मयनासुन्दरी ने बात तो न्याय-सगत ही कही पर राजा अपना गर्व्व खर्व्व नहीं सहन कर सकता। अस्तु इसी प्रकार की कानाफूसी सारी सभा मे होने लगी। उधर राजा ने कुपित होकर मयनासुन्दरी को अपने

सामने से दूर ले जाने की आज्ञा दी। और इस प्रकार रंग मे भंग होगया।

सभा विसर्जित हुई ? मंत्री ने राजा का क्रोध शान्त करने के लिये नम्र वचनो में मयना को अबोध एवं बालिका बता कर उसे क्षमा करने की अनेक प्रकार से प्रार्थना की और सायंकाल समीप होने के कारण वायु सेवन के लिये चलने की प्रार्थना की।

राजा ने भी जी बहलाने का उपयुक्त अवसर जानकर वायु-सेवन के निमित्त जाना स्वीकार किया और सब प्रकार की तैयारी होने पर वायु सेवनार्थ बाहर निकले।

जब राजा चलते चलते नगर के कुछ दूर बाहर पहुँचे तब सामने से एक धूल का बवडर सा उडता दीख पड़ा। उसे देखकर राजा ने मंत्री से उसके विषय मे पूछ ताछ करने को कहा। मत्री ने अङ्गरक्षक गण मे से एक को भेज कर पुछवाया। मालूम हुआ कि वह सात सौ कुष्टियो का एक बडा समूह है जो राजधानी की ओर को चला आ रहा है।

इसी पूछताछ, मे वह समूह बहुत समीप आगया और राजा के इस सैन्य दल को देख अलग ही ठहर गया। और उस दल मे से एक कुष्टि आगे बढ़ कर राजा के समीप आया। उस कुष्टि समूह को देख कर राजा उलटे फिरने लगे थे। अत. उस कुष्टि ने आकर हाथ जोड़ कर महाराज से एक अपनी प्रार्थना सुन लेने को कहा। सुन कर महाराज ठहर गये। उनके ठहर जाने पर कुष्टि ने कहा —

"श्रीमान् राजराजेश्वर हमारा सात सौ कुष्टियों का एक समूह है जिसमे हमारा एक प्रधान निश्चित है। वह कुलीन है पर दैववश वह हम मे सम्मिलित हो गया। अब उसके विषय में आप से एक प्रार्थना है। आप सामर्थ्यशाली हैं, सब प्रकार शक्तिमान हैं महा प्रतापान्वित पुण्यशाली हैं, और सब की कामनाएं पूर्ण करने के लिये कल्पवृक्ष रूप हैं इस कारण हमें भी आपसे कुछ याचना करने का साहस होता है। हमारे प्रधान का श्रीमान् अपने अन्त पुर की किसी दासी आदि की कन्या से विवाह करादे हम श्रीमान महाराज के सदा कृतज्ञ रहेगे। हमे आशा है कि महाराज हमारी प्रार्थना स्वीकार करेगे।"

राजा ने हृदय मे कहा--मयनासुन्दरी अब तुम्हारे भाग्य का निर्णय होता है। तुम्हे कुष्टी के हाथ मे अर्पण करके देखूंगा, तुम किस प्रकार अपने दिव्य रूप सौन्दर्यदाता भाग्य पर गर्व करती हो। तब उन्होंने प्रकाश रूप मे उस कुष्टी दूत से कहा—

'हमे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार है। तुम कल हमारे यहा दरबार मे अपने प्रधान को लेकर आओ। वहा हम तुम्हे दासी कन्या नही वरन सुशील, सुन्दर और बुद्धिमती राज कन्या अर्पण करेगे'।

कुष्टि ने हाथ जोड कर राजा को धन्यवाद दिया और अपने समूह को चला गया।

राजा भी फिर कर अपने महलो को वापस आये।

" राजा ने मयना सुन्दरी का हाथ पकड़ कर कुष्टी को समर्पित कर दिया "

पृ० सं० १७

(२)

भाग्य-चक्र

दूसरे दिन बड़ी शानवान से दरबार लगा पर कल जैसी आनन्द धारा वहां न थी, न वह उल्लास का विकास, न मृदुहास का प्रवाह, न वह चहल पहल दीख पड़ती थी, न किसी की मुखाकृति पर सतोष और शान्ति की रेखा थी। जो था वह खिन्न था उदास था, म्लान था, दुखित था और इस प्रकार बैठा था मानो उसका कुछ खो गया है। सारी सभा मे शून्यता प्रतीत होती थी।

राजा, मत्री, राज्यगुरु, राज्य सभासद आदि सब उपस्थित थे। सुरसुन्दरी भी भावी पति सहित उपस्थित थी। एक ओर मयनासुन्दरी भी स्वावलम्ब-भाव-गर्वित प्रतिमा सी बैठी थी। इतने मे चोबदार ने कुष्टि समूह के आने की सूचना दी। महाराज मानो इसके लिये तैयार थे। उन्होने तत्काल आज्ञा दी कि कुष्टियो के प्रधान ही को उसके दो तीन आवश्यक साथियों सहित बुला लिया जाय। अस्तु,

प्रधान और दो तीन अन्य कुष्टि सभा मे आये। उन्हे यथा योग्य आसन दिया गया।

तब महाराज ने मयनासुन्दरी को बुला कर कहा "मयना! तुम्हे अब भी अपने कथन पर कुछ पश्चात्ताप होता है या नहीं देखो अभी तुम्हारे लिये समय है, तुम केवल भाग्य को ही कर्त्ता, हर्त्ता और भर्त्ता कहना छोड दो। वह देखो वह कुष्टी, वह गलिताङ्ग तुम्हारे भाग्य ने तुम्हारे लिये वर बना कर भेजा है, और यह देखो इन राजसी वीरो में से तुम्हारे लिये पति रूप मे तुम्हारी इच्छानुसार मैं चुन सकता हूँ। अब कहो, ख़ूब सोच समझ कर विचारपूर्वक कहो तुम किससे अपने जीवन सहचर का निर्णय कराना चाहती हो? मुझसे या भाग्य से?

मयना ने दृढ़तापूर्वक निर्भीक भाव से उत्तर दिया 'भाग्य से'।

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। राजा का मुख क्रोध से तमतमा उठा। उसने सिंहासन से उतर कर मयनासुन्दरी का हाथ पकड़ कर उसे कुष्ठी को समर्पित कर दिया। कुष्ठी उसके पाणिग्रहण करने मे हिचकिचाया। बोला—

'महाराज! क्रोधावेश मे ऐसा अन्धेर न कीजिये। ऐसी सुन्दरी, रूप गुणसम्पन्ना और देवाङ्गना सदृश कन्या को मुझ जैसे हतभाग्य कुष्ठी को अर्पित न कीजिये। मेरा यह गलिताङ्ग इस सर्वाङ्ग सुन्दर युवती के योग्य नही है। यदि हो सके तो आप किसी दासी पुत्री आदि से मेरा विवाह करा दीजिये अन्यथा हमे आज्ञा दीजिये हम प्रस्थान करें'।

राजा ने कहा—तुम्हारा भाग्य प्रबल है प्रधान। यह कन्या भाग्यवादिनी है। इसका भाग्य स्वय तुम्हे उन्नत एव निरोग करेगा। मैं तुम्हे इसका सहर्ष दान करता हू। तुम पाणि-ग्रहण करो।

राजा ने कन्या का हाथ उस प्रधान के हाथ मे दे दिया। मयनासुन्दरी ने अम्लान भाव से उस कुष्ठी को अपना पति स्वीकार किया और उसके वामाङ्ग पर खड़ी हो गई। मयना-सुन्दरी की माता रूपसुन्दरी और उसके मामा जो उस समय उसी सभा मे ठहरे हुए थे, राजा से मयनासुन्दरी को उसके बालहठ के लिए क्षमा करने को अनेक प्रार्थना करते रहे पर राजा भी अपनी राजहठ से तनिक विचलित न हुए। यहां तक कि लौकिक नय के अनुसार उसे यौतुक आदि से भी वंचित रक्खा। अस्तु, मयनासुन्दरी का विवाह कुष्ठी के साथ कर दिया गया। सारे कुष्ठी हृदय मे अतीव प्रसन्न हुए और महाराज प्रजापाल की

जयध्वनि करने लगे। तब प्रधान मयनासुन्दरी सहित बिदा होकर अपने निवासस्थान को आये।

शनै. शनै निशा की कालिमा मे अखिल संसार डूब गया। कुष्टी प्रधान मयनासुन्दरी जैसी लोकोत्तर रूप माधुरी को पाकर बड़ी असमञ्जस मे पड़े। अपने कुष्टजर्जर शरीर को देख कर और उसके स्वर्गीय सौन्दर्य एव चन्द्र विनिन्दित मुख को देख उनके हृदय में अपार पीड़ा हुई। जब वे इस व्यथा को हृदय में दमन न कर सके तब मयना से बोले—

"सुन्दरी! यद्यपि तुम्हारा आग्रह दुराग्रह नहीं अपितु सत्याग्रह था और तुमने सत्य प्रतिपालनार्थ सर्वस्व का बलिदान किया पर फिर भी तुम्हे यह उचित न था कि तुम मुझे स्वीकार करती। मेरे इस सारे गलिताङ्ग से कुष्ट के दुर्गन्धिमय रस की धाराए बह रही हैं वे तुम्हारे इस उज्ज्वल निर्मल रूप यौवन को क्षार कर देगी, तुम्हारी इस अनुपम सौन्दर्य-प्रभा को मिटा डालेगी। मेरी इच्छा है और हार्दिक अनुज्ञा है कि तुम अपनी माता के समीप जाकर किसी अन्य सुन्दर राजकुमार से विवाह करा देने को कहो"।

यह सुन कर मयनासुन्दरी अत्यन्त क्षुभित हुई। उसने क्षुब्ध स्वर मे कहा—

"नाथ! यह आप क्या कहते हैं? आप कदाचित् नारी हृदय को नही पहचाते। स्त्री के लिए उसका पति ही सर्वस्व है, वही देवता है, पूज्य है, और प्राणाधार है। दरिद्र पति भी उसके लिये कुवेर है, गलिताङ्ग वा अङ्गविहीन भी उसके लिए कोटि-कामदेवो को लजाने वाला सर्वाङ्ग सुन्दर एवं रोग विहीन है। मेरे लिए आप मेरे जीवन-सर्वस्व, हृदयाधार और प्राणपति हैं।

मेरा शरीर या प्राण यदि आपका तिलमात्र भी उपकार कर सके तो मेरा जीवन-उद्देश सफल हो जाय। हाय मैं आप से कैसे कठोर एवं हृदयवेधक शब्द सुन रही हूं मेरे कर्ण युगल ऐसे शब्द सुनने के पहले ही क्यो न गल कर गिर गये। नाथ! अब फिर अपने पवित्र मुख से ऐसे अपशब्द मत उच्चारण कीजियेगा"।

इतना कहते कहते मयना का कण्ठ रुद्ध हो गया। अमोल कपोलो पर बड़े बड़े मुक्ताबिन्दु ढलक पड़े तब कुष्ठियो के प्रधान ने मयना को सान्त्वना देते हुए कहा—

'धन्य है देवि! धन्य है। धन्य है उस कुक्षा को जिसमें तुम्हारे जैसी अलौकिक देवदुर्लभ स्त्रीरत्न जन्म लेती है। तुम केवल सती ही नही सती-शिरोमणि नारी हो। मैंने तुम्हारे उच्च एव विशाल हृदय को बिना पहचाने तुम्हे जो मर्म्मस्पर्शी पीडा पहुँचाई है उसे क्षमा करो। मैं अपने को बडा भाग्यशाली समझता हूं कि मुझे ऐसा स्त्रीरत्न प्राप्त हुआ है जो स्वर्ग मे दुर्लभ है।

इस प्रकार मयनासुन्दरी को अनेक शान्ति एव सन्तोषप्रद बचन कहकर वह कुष्ठीराज सो गये। धीरे धीरे मयना भी उनकी सुश्रूषा करती हुई निद्रा माता की गोद मे जा पहुँची।

(४)

भाग्योदय

उस समय ऊषा की आभा कुछ कुछ विकसित हो रही थी जब मयनासुन्दरी उठ बैठी। थोड़ी देर पश्चात प्रधान की भी

आंखें खुलीं देखा सवेरा हो रहा है। उठ कर नित्य क्रिया शौचादि से निवृत्त हुए। तब मयना ने कहा 'आर्यपुत्र' जैन के प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव भगवान का यहां परम रमणीक एवं नयनाभिराम मन्दिर है उसमे दर्शनार्थ चलिए। वहां चलने पर हमारे सर्वसंकट दूर होंगे'। प्रधान और मयनासुन्दरी दोनों मन्दिर की ओर चले।

मन्दिर मे पहुँचकर उन्होने बड़े श्रद्धाभाव से चैत्यवन्दनादि क्रिया पूर्वक भगवान के दर्शन किये। मयनासुन्दरी ने विविध प्रकार से केसर, चदन, धूप दीप पुष्प और नैवेद्य सहित भगवान् की पूजार्चना की और याचना की कि 'हे प्रभो ! आप अशरण शरण दीनबन्धो और पतितपावन हैं, हम अशरण, दीन और पतित हैं हमारी रक्षा करिये'।

कुष्ठिराज ने प्रार्थना की—

'हे दयामय सौख्यसिन्धो ! आपकी जय हो। आप दु'खित जनों का दु ख दूर करने वाले, शरणागतों का रोग शोक हरने वाले और मृतप्राय एव साहसशून्यों में नव जीवन भरने वाले हो। आपके दर्शनमात्र से धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो फलो की प्राप्ति होती है। जरा-मरण के जाल छुडा कर आप जीवनमुक्त करने वाले हो। हम रोगी और दु खित हैं हमारा त्राण कीजिए'।

पाठको ! उनके ऐसी प्रार्थना करने पर एक आश्चर्य-घटना हुई जो अब तक जैन इतिहास मे अमिट और स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है कि भगवान् के गले का पुष्पहार और उनका करस्थित

'बीजोरु' का फल क्रमश. कुष्टीराज के गले और हाथमें आगये।*
अधिष्टायक देवता ने प्रसन्न होकर ये दोनों वस्तुए उन्हें प्रदान की।
यह अद्भुत व्यापार देख मयनासुन्दरी के हर्षोल्लास की सीमा
न रही ? और प्रसन्नचित्त होकर दोनों पति पत्नी भगवान का
गुणानुवाद करते हुए चैत्यालय से बाहर आये।

आते समय मार्ग मे जैनसाधु का उपाश्रय मिला। तब दोनों
मुनिराज के दर्शनार्थ वहा गये। वहा मुनिराज धर्मोपदेश
दे रहे थे। ये दोनो भी वन्दना नमस्कार करके बैठ गये। जब
मुनिराज धर्मोपदेश समाप्त कर चुके तब उन्होने मयनासुन्दरी को
लक्ष्य करके कहा—

"वत्स ! तुम जब कभी आती थी तो तुम्हारी माता आदि
परिजन तुम्हारे साथ होते थे पर आज तुम अकेली दीख पडती
हो इसका क्या कारण है। दूसरे तुम्हारे साथ यह पुरुषरत्न

---

* हमारे अधिकाश पाठकों को इस विषय के मान्य करने में बड़ी
आपत्ति होगी परन्तु हम उन लोगों से कुछ नहीं कहना चाहते जो भौतिक-
वाद को ही अपना सर्वस्व समझते हैं और जिन्हें कोई तर्क अथवा युक्ति
नहीं हरा सकती। पर हा उनकी सेवा में, जो युक्तिसगत बात और तर्क-
प्रणाली को सहर्ष शिरोधार्य करते हैं अवश्य यह निवेदन करना
चाहते हैं कि देवताओं का चमत्कार, जो सनातनधर्म तथा अन्य प्राचीन
धर्मों में श्रद्धा रखने वाले हैं, उन्हें अवश्य मान्य हैं। रामायण में श्री
तुलसीदास जी ने पार्वती जी की—पत्थर की मूर्ति से सीताजी को सान्त्वना
वचन कहलाया है। "विनय प्रेम वश भई भवानी··· ··· ······ करुणा-
निधान सुजान शील सनेह जानतरावरो" देखिये रामायण बालकाण्ड।

—लेखक

कौन है। यह सर्व लक्षण संयुक्त राजाओं का राजा एवं पुरुष-श्रेष्ठ प्रतीत होता है"।

विषाद हर्ष मे परिणित हो गया यह सुनकर मयनासुन्दरी के हर्ष की सीमा न रही उसने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त मुनिराज के सामने निवेदन किया। और अपने पति के रोग निवारण का उपाय पूछा।

तब मुनि बाले—

'पुत्री! किसी के लिए जडी बूंटी आदि अथवा मन्त्र तन्त्रादि का उपयोग करना निस्पृह तथा ससारत्यागी साधुजनों के लिए उचित नहीं है, परन्तु हम देखते हैं कि यह तेरा पति एक प्रभावशाली ख्यातनामा और जैनधर्म का यशोवर्द्धक व्यक्ति होगा–अस्तु इसके रोग-निवारण के लिए हम तुम्हे एक सिद्ध–चक्र-यन्त्र प्रदान करते हैं। इसको शुद्ध भाव से निर्मल देह से पवित्र होकर यथा विधि प्रयुक्त करना और नवपदजी की ओली करके स्नान के जल के छींटे इन्हे देना जिससे इनका सब रोग शान्त होगा। सिद्ध चक्र मन्त्र का सतत जप करने से सर्व मनो-कामना सफल होगी। भविष्य मे भी इसके प्रभाव से अष्टसिद्धि नव निधि प्राप्त होगी। यह सदैव भूत भविष्यत् वर्त्तमान के लिये मङ्गलजनक है'।

मयनासुन्दरी ने हाथ जोड़ कर कहा—

'उपकार भगवान्! आपका सहस्रस उपकार। हमारे जैसे अनाथो पर आपही जैसे दयालु दया करते हैं। मुझे अपने पति के कष्ट से अधिक कष्ट इस बात का होता है कि इन के रोग के कारण जैनधर्म की अवहेलना होती है'।

तब मुनिराज ने उक्त यन्त्र मयनासुन्दरी को प्रदान किया। जिसे उसने सहर्ष शिरोधार्य किया। उसके पश्चात् मयनासुन्दरी और उसके पति ने मुनिराज को वन्दना नमस्कार करके प्रस्थान किया।

मयनासुन्दरी ने अपने वासस्थान पर आकर उसी दिन से मुनि महाराज के बताये हुए विधि विधानो पूर्वक नवपद यन्त्र सिद्ध करना आरम्भ कर दिया। कहना न होगा कि सिद्ध चक्र आराधन से मयनासुन्दरी के पति का शरीर नित्यप्रति निरोग और सुन्दर होता गया और कुछ ही समय मे उनका शरीर काञ्चन के वर्ण के सदृश रूप लावण्य पूर्ण होगया। इस प्रकार मयनासुन्दरी को अपने धर्म कर्म के प्रभाव से अनेक सद्‌गुण सयुत एवं अलौकिक रूप यौवनधारी सुन्दर पति प्राप्त हुआ। प्रधान ने उसी स्नान जल के छीटो से सातसौ कुष्टियो का भी रोग शान्त कर दिया और वे प्रसन्न होकर प्रधान को धन्यवाद देते हुए अपने अपने घर गये।

(५)

सम्मेलन

एक दिवस मयनासुन्दरी पति सहित मन्दिर से लौट रही थी। मार्ग मे एक वृद्ध स्त्री को देखकर मयनासुन्दरी के पति 'माता माता' कह कर उसके चरणो पर गिर गये। उस स्त्री ने भी 'अहो! पुत्र श्रीपाल इतने काल पश्चात् मिले' कहकर उन्हे हृदय से लगा लिया। मयनासुन्दरी ने भी उन्हे अपनी सासू समझकर चरणस्पर्श किया।

पाठक ! आप समझे इतने दिनों तक हम आप जिन्हे कुष्टियो का प्रधान समझते आये वह वही श्रीपाल कुमार है जिन्हें चिरकाल हुआ तब हमने सातसौ कुष्टियो के समूह में छोडा था। वही श्रीपाल कुमार मयनासुन्दरी के पति है और यह स्त्री इनकी चिर वियुक्त माता है। अब चलिये इनके साथ इनके वासस्थान पर चल इनकी माता की कथा सुने।

तब श्रीपाल मयनासुन्दरी तथा श्रीपाल की माता वासस्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर श्रीपाल की माता ने श्रीपाल से उसके आरोग्य होने के विषय मे तथा मयनासुन्दरी के विषय मे पूछा। श्रीपाल ने कहा—

'माता तुमसे वियुक्त होने के पश्चात् हमारा समूह यहाँ उज्जयिनी पहुँचा। जब हम नगर की ओर आ रहे थे तब नगर के समीप मार्ग मे ही हमे यहाँ के महाराज मिल गये। वे वायुसेवनार्थ बाहर गये थे। उन्हे देख और यह जानकर कि ये यहाँ के राजा हैं हमारे प्रधान कुष्टीनायक ने उनके समीप जाकर मेरे विवाह के लिये किसी कन्या के दान करने के लिए याचना की। महाराज ने वह प्रार्थना स्वीकार की और दूसरे दिन दरबार मे आने की आज्ञा दी। हम लोग दूसरे दिन वहाँ पहुँचे तब महाराज ने इस मयनासुन्दरी से इसके भाग्यवादिनी होने पर क्रुद्ध होकर इसका पाणिग्रहण मेरे साथ कर दिया। इसके पुण्य-प्रताप से श्रीसिद्धचक्र यन्त्र की प्राप्ति का सुयोग मिला और उसके प्रभाव से मेरा सारा दुःख [illegible] दूर हो गया और निर्मल देह हो गई'।

माता ने पुत्र से बहू की प्रशंसा सुनकर और उसे राजकन्या जानकर बडा हर्ष प्रकट किया। तब उसने बहू (मयनासुन्दरी) को

अपना सब पूर्व वृत्तान्त सुनाया और फिर श्रीपाल से बिछुड कर यहाँ उज्जयिनी मे किस प्रकार आकर मिली वह सब कहा।

पाठक ! आप भी यह जानने को उत्सुक होगे कि श्रीपाल की माता श्रीपाल से वियुक्त होकर कहाँ गई और फिर यहाँ कैसे आकर मिली। अस्तु,

हम अपनी कथा का का क्रम मिलाने के लिए अब उसे वहाँ से प्रारम्भ करेगे जहाँ से हमने श्रीपाल को तथा उसकी माता को कुष्टियो की सरक्षकता मे छोडा था।

वहाँ से उनको कुष्टियो के साथ इधर उधर भ्रमण करते बहुत काल व्यतीत हो गया। श्रीपाल की माता जहाँ तक होता उनसे अलग ही रहने का यत्न करती और श्रीपाल को तथा अपने शरीर को भी उनकी धूलि से बचाने का यथाशक्ति प्रयत्न करती रहती थी जिससे चिरकाल तक वह अपने को तथा श्रीपाल को उनके रोग से बचाए रही। यहाँ तक कि श्रीपाल कुमार ने शैशवावस्था को त्याग कर किशोरावस्था मे पदार्पण किया। पर इसी बीच मे दुर्दैव से श्रीपाल को कुष्टियो के सम्पर्क से कुष्ट रोग हो गया। माता यह देख कर बड़ी दु खित हुई। पूछताछ करने पर उसे कहीं किसी कुष्ट-चिकित्सक वैद्य का पता ज्ञात हुआ वह श्रीपाल को कुष्टियो के साथ छोड कर उस वैद्य की खोज मे चली। चलते २ मार्ग मे एक ज्ञानी गुरु मिले। उन्होने श्रीपाल की माता से श्रीपाल का आरोग्य सम्बन्धी सब वृत्तान्त कहा कि उज्जयनी नगरी मे तुम्हे श्रीपाल निरोगावस्था मे मिलेगे। यह सुनकर परम पुलकित होकर माता उज्जयिनी नगरी को चली। दूर होने के कारण कई मास मे वह उज्जयिनी पहुँची। वहा पहुच कर जिस प्रकार यह अपने पुत्र श्रीपाल से मिली वह पाठकों को मालूम ही है।

(६)

मिजिनोत्सव

अनेक प्रार्थनाएं करने पर भी जब राजा ने हठ करके मयनासुन्दरी का विवाह कुष्टी के साथ कर दिया। तब मयनासुन्दरी की माता रूपसुन्दरी हृदय मे क्षुब्ध होकर अपने भाई के पास जो उसी नगर में मयनासुन्दरी आदि के परीक्षा-दिवस से एक विशाल भवन मे ठहरे हुए थे चली गई।

एक दिवस वह मन्दिर मे दर्शनार्थ गई। वहां उसने अपनी पुत्री मयनासुन्दरी के साथ एक स्त्री और एक महान् कान्तिमान् दिव्य सौन्दर्य्यधारी तेजस्वी पुरुष को देखा। उसे देखकर रूप सुन्दरी महाविस्मय मे पडी। पहले उसने विचार किया कि कदाचित मयना के अनुरूप यह कोई और स्त्री है परन्तु पीछे सन्देह निवारणार्थ समीप से देखने पर विशेष सोचने के कारण उसे ज्ञात हुआ कि वह मयनासुन्दरी ही है। सोचने लगी कि मेरी पुत्री का विवाह तो एक कुष्टी के साथ हुआ था यह दिव्य सौन्दर्यधारी पुरुष इसके साथ कौन है? अरे! क्या इस दुष्टा ने अपने कुल को कलङ्कित करके उसका परित्याग कर दिया और यह दूसरा पतिवरण किया है। इस प्रकार वह मन में सोचती हुई महा खिन्न हुई। मयनासुन्दरी ने माता को मदिर मे प्रवेश करते देख लिया था जब उसने माता को किसी असमञ्जस मे पड़कर विषण्णवदन होते देखा तब वह माता के मतलब को समझ गई। उसने माता के पास जा सविनय प्रणाम किया और कहा—"माता यह श्री जिनेश्वर भगवान् का चैत्यालय है यहां किसी प्रकार की दुश्चिन्ता का भाव हृदय में न लाना चाहिये। हमारे भी सब दु:ख शोक श्री जिनेश्वर भगवान की कृपा से नष्ट होगये। यहा सांसारिक

वार्तालाप करने से कर्म्मबन्धन होता है अतएव जहां हमारा वासस्थान है वहां चलिये। वहा आपको सब वृत्तान्त विदित होगा।

यह सुन कर रूपसुन्दरी श्रीपाल आदि के साथ उन के वासस्थान को गई। वहां पहुँच कर मयनासुन्दरी ने अपनी सासू से उसका परिचय कराया और चारो जन एकत्र हो कर बैठे। वहा श्रीपाल की माता कमलप्रभा ने मयनासुन्दरी की माता को अपना साद्यन्त वर्णन सुनाया जिसे सुनकर रूप-सुन्दरी अपनी पुत्री को ऐसा कुलीन तथा उच्चवंश-सम्भूत पति प्राप्त हुआ जान कर अतीव हर्षित एवं पुलकित हुई।

सब वृत्तान्त से अवगत होकर मयनासुन्दरी की माता अपने भाई पुण्यपाल के पास आई और उनसे सब वृत्तान्त सविस्तर कहा। पुण्यपाल अपनी भानजी का ऐसा सुखमय वृत्तान्त सुन कर अतीव पुलकित हुए और बडे समारोह सहित मयनासुन्दरी श्रीपाल और उनकी माता को सादर अपने वासस्थान पर ले आये। वहा श्रीपाल और मयनासुन्दरी आनन्दोल्लास मे निमग्न हो कर अनेक प्रकार के सुख भोगने लगे।

इस प्रकार यह सब सज्जन एकत्र हुए।

(७)

सत्य-स्वीकृति

एक दिवस महाराज प्रजापाल सन्ध्या समय वायुसेवन से लौट रहे थे तब उनकी दृष्टि सहसा एक विशाल महल की एक खिडकी पर जा पडी। उसे देख कर वे बडे चकित और विस्मित हुए।

उन्होने देखा कि उनकी पुत्री मयनासुन्दरी एक बड़े ही रूप लावण्य युक्त सुन्दर युवक के पास बैठी है, और वहां से अनेक प्रकार के वाद्यो की स्वर-तालपूर्ण मधुर ध्वनि आरही है। राजा यह देख कर ठहर गये और हृदय मे खिन्न होकर विचार करने लगे—अरे ! मैंने विना विचार किये बड़ा बुरा कृत्य किया जो मयना को एक कुष्टी को अर्पित कर दिया। ऐसी रूप सौन्दर्य युक्त नव रमणी क्या कभी विषयवासनाजनित लोभ सवरण कर सकती थी ? कदापि नहीं। अवश्य ही उसने उस कुष्टी पति को परित्याग करके यह कोई दूसरा पुरुष स्वीकार किया है। धिक्कार है मेरी उस क्रोध बुद्धि पर, तथा धिक्कार है इस कुलाङ्गार कुल कलङ्किनी मयना पर जिसने हठ कर के अपना और अपने साथ ही अपने कुल का सर्वनाश किया, अपने वश की समुज्वल कीर्ति-कौमुदी मे कलङ्क-कालिमा पोत दी।

राजा यह विचार कर ही रहे थे कि किसी प्रकार उन्हे उनके साले राजा पुण्यपाल ने देख लिया और उन्हे इस प्रकार चिन्ता-ग्रस्त मुद्रा मे खडे देख उनके हृदयगत भावो को ताड़ लिया। अस्तु वे शीघ्रता से बाहर आये और महाराज को सम्मान पूर्वक अन्दर लिवा ले गये। अब महाराज के लिये यह एक बड़ी कठिन समस्या हो गई। वे अधिक देर तक अपने औत्सुक्य को न छिपा सके और पुण्यपाल से उक्त घटना का कारण पूछा। राजा पुण्यपाल ने महाराज को आदि से अन्त तक सारी कथा विस्तारपूर्वक सुनाई और अन्त मे कहा 'महाराज यह हमारी पुण्य-प्रतिमा नारी शिरोमणि मयना के सौभाग्य का कारण है कि उसे ऐसा कुलीन राजराजेश्वर तुल्य, वीर और सुन्दर पति प्राप्त हुआ। यह सब सिद्धचक्र की महिमा है। जैनधर्म का प्रभाव है'।

महाराज पुत्री के इस सौभाग्य पर अतीवानन्दित एवं प्रफुल्लित हुए। वे शीघ्रता से प्रिय पुत्री मयना से मिलने चले जिस पर उन्होंने अपनी समझ मे अत्याचार की पराकाष्ठा करदी थी। पुण्यपाल महाराज प्रजापाल को अन्दर तो ले ही गये थे इसलिये राजा शीघ्र ही भवन के उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मयनासुन्दरी इस समय आनन्दोत्सव मग्न थी। वह दूर से ही मामा के साथ अपने पिता को आते देख शीघ्रता से उठ खड़ी हुई और पिता के चरणो पर लोट गई। श्रीपाल कुमार ने भी नत-मस्तक होकर प्रणाम किया। महाराज ने पुत्री को उठा कर प्यार किया और कुमार को आशीर्वाद दिया। तनिक ध्यान से देखने पर राजा ने पहचान लिया कि वास्तव मे यह वही व्यक्ति है जिससे मैंने रोग की दशा मे मयनासुन्दरी का पाणिग्रहण कराया था।

रानी रूपसुन्दरी, मयना के साथ राजा के कठोर व्यवहार पर दु:खित चित्त होकर, अपने भ्राता के पास चली आई थी तब से वह बराबर यही थी सो महाराज ने उसे भी बुलवाकर उससे अपने कठोर व्यवहार पर पश्चात्ताप प्रकाश किया। जब सब एकत्र हो कर बैठे, तब राजा ने मयनासुन्दी से कहा—

'पुत्री! अपने कठोर व्यवहार पर मैं पश्चात्ताप करता हू। तुमने जो कुछ सभा मे कहा था वह आग्रह रूप नहीं वरन् सत्य था। मैं अनुभव करता हू कि वह वास्तव मे मेरी ही त्रुटि और गर्वोक्ति थी। मैंने तुम्हें कठोर से कठोर दण्ड जो एक पिता अपनी सन्तान को दे सकता है दिया, पर धन्य है पुत्री तुमने उसे अम्लान भाव से सहन किया और धर्म द्वारा इस कठोर दण्ड को परास्त करके भाग्य की महत्ता का ज्वलन्त उदाहरण संसार के सम्मुख रक्खा। धन्य है तुम्हारा जैनधर्म जिसमे ऐसे तर्कों और

सिद्धान्तो का समावेश और सञ्चय है कि जो तीनो काल मे सत्य हैं। मै प्रतिज्ञा करता हू कि मैं मन, वचन, कर्म से श्रीजिनेश्वरदेव के कहे हुए मार्ग पर चलूगा। मैंने तुम्हारे साथ जो कठोर व्यवहार किया है उस पर मै हृदय से लज्जित हूं, तुम अपने हृदय मे मेरी ओर से क्षुद्रातिक्षुद्र भी क्षोभ का भाव न रखना'।

मयनासुन्दरी ने उठकर पिता के चरण पकड़ लिये और अश्रुपात करती हुई कहने लगी—'पिता जी! यह सब कर्मों की ही लीला थी आपका दोष नही था। आपके पुण्यप्रताप से सब अच्छा ही हुआ। उस घटना को भी मैं अपने पूर्वपुण्य का कारण समझती हू जिसके सयोग से मुझे देवतुल्य पति प्राप्त हुए। आप किसी भी पिछली बात का हृदय मे सोच न करे'।

पाठक! उस समय के हर्षोल्लास को लिखने की शक्ति हमारी मूक लेखनी मे नही है। वह अव्यक्त और अनिर्वचनीय आनन्द का एक श्रोत था जो अनुभवी पाठको के सरस हृदय मे बह उठा होगा। कभी वह छलछला न पड़े इस विचार से इस परिच्छेद को यहीं समाप्त करते है। महाराज प्रजापाल ने बड़ी धूमधाम से नगर की सजावट कराई और कुमार श्रीपाल मयनासुन्दरी, कुमार की माता, मयनासुन्दरी की माता रूपसुन्दरी और राजा पुण्यपाल को अपने राजभवन में ले गये। वहां श्रीपाल को अलग निवास स्थान दे दिया गया। श्रीपाल कुमार मयनासुन्दरी के साथ नित्य नवीन विलास करते हुए रहने लगे।

---

(८)

विदेश-भ्रमण

चिरकाल तक श्रीपाल कुमार उस आनन्द विलास मे मग्न रहे। मयनासुन्दरी जैसी लोकोत्तर रूप माधुरीमयी रमणी को पाकर कौन ऐसा अभागा व्यक्ति हो सकता है जो अपने सब दुःखो को न भूल जाय। इसी आमोद-प्रमोद मे बहुत सा समय व्यतीत होगया। एक दिन श्रीपाल कुमार बडी सजधज से कुछ अङ्ग-रक्षक गण एवं मित्रो के साथ वायु सेवनार्थ नगर के बाजार मे होकर निकले। उनकी अपूर्व छटा देखने के लिए नगर निवासी चारो ओर से एकत्र होरहे थे। अनेक स्त्रिया अपनी छतो पर उन्हे देखने के लिए झुकी हुई थी। उसी अवसर पर श्रीपाल कुमार ने किसी को किसी से यह कहते सुना कि 'ये हमारे महाराज प्रजापाल के जामातृ हैं'। ये शब्द सुनते ही श्रीपाल के हृदय पर एक चोट सी लगी। सारा आनन्द उल्लास हवा होगया। विचारने लगे कि—"अहो! लोग मेरा परिचय श्वसुर के नाम से देते है। वास्तव मे मै हू भी बडा नीच जो इतने दिन से श्वसुरालय मे पडा हुआ हू और श्वसुर के नाम से परिचित होता हू। ससार मे जो व्यक्ति स्वनामधन्य होता है वही उत्तम कहलाता है जो पिता के नाम से परिचित होता है वह मध्यम गिना जाता है। जो मामा के नाम से जाना जाय वह अधम कहा जाता है और जो श्वसुर के नाम से पहचाना जाय वह तो अधमाधम कहलाता है। अब मुझे इस आनन्द-विलास का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। बद्ध परिकर होकर एक बार कर्म्मक्षेत्र मे कूद पडना चाहिये फिर जो मार्ग विधाता दिखलाये उसी पर चलूगा। चाहे इसमे विघ्न पडे अथवा अपरिमेय बाधाओ का सामना करना पडे।

यह विचार स्थिर कर श्रीपाल कुछ दूर जाकर अपने निवास भवन को लौट आये। वहा आकर उन्होने माता तथा मयनासुन्दरी से अपने मनोगत भाव प्रगट किये। तब माता ने कहा —

"पुत्र! चिरकाल पश्चात् अब यह ऐसा अवसर आया है कि मै तुम्हे सब प्रकार सुखी एव सन्तुष्ट देख सकू, पर तुम यह बीच मे ही क्या नया झंझट खडा करते हो। अब मेरी वृद्धावस्था का समय है। न जाने कब मेरे श्वास पूरे हो जाय मै यह नही चाहती कि तुम मेरे नेत्रो से ओझल हो जाओ। मेरी इच्छा है कि तुम मुझे छोड कर कहीं न जाओ"।

श्रीपाल कुमार ने कहा—

"माता! तुम वीरमाता हो। तुम ऐसी कायरता की बाते क्यो करती हो? क्या तुम्हे यह अच्छा प्रतीत होता है कि तुम अपने ससुराने के अन्न पर निर्वाह करो। मै यह नहीं सहन कर सकता कि अपने श्वसुर के नाम से पहचाना जाऊं। अस्तु, प्रसन्न चित्त से आज्ञा दो कि मै विदेश से सफल होकर आऊँ"।

तब माता ने हृदय पर वज्र रखकर पुत्र को विदेशगमन की अनुमति दी और विदा के माङ्गलिक साज सजाने चली।

माता के चले जाने पर मयनासुन्दरी पति के चरणो पर लोट कर फूट फूट कर रोने लगी। 'प्रियवियोग जनित व्यथा भीषण रूप धारण करके उस के सामने मानो मूर्तिमती सी खडी होगई। उसको इस प्रकार दुःख कातर होते देख श्रीपाल कुमार ने मयनासुन्दरी से अनेक सान्त्वना वचन कहे। उन्होने कहा—

"प्राणाधिके! मै जानता हू प्रिय वियोग से बढ कर दुःख ससार मे नहीं है, पर तुम्हे इस प्रकार शोक-विह्वल न होना चाहिए क्योकि मै शीघ्र ही विदेश पर्य्यटन से लौटूगा। इसके

अतिरिक्त मनुष्य के लिए स्वनामख्यात होना ही सबसे बड़ा गौरव है। क्या मेरे गौरव से तुम भी गौरवान्वित न होगी? मेरी लाञ्छना से तुम भी लाञ्छित नही होती? तुम्हारा मानापमान मेरे मानापमान के साथ है, ऐसी दशा मे तुम्हे यह उचित नही मेरे गमन मे तुम किसी प्रकार की आपत्ति करो"।

मयना बोली—

"नाथ! हम अबला स्त्रियो के केवल आप ही बल है। स्त्री का एकमात्र अवलम्ब पति है। विना आपके बल अथवा अवलम्ब के हम निरावलम्ब है, निराश्रय है। अतएव आप हमे छोडकर कही न जाइये-अथवा जहा जाये वहा हमे साथ ले चलिए। मेरे प्राण विरह की विषम वेदना क्षणमात्र भी सहन कर सकने योग्य नही है। आपके दर्शन विना अखिल ससार अधकार मय है। आप ही मेरे हृदय मन्दिर के आराध्य देव, मेरे नेत्रो के तेज और मेरे भाल के तिलक हो। आपके विना क्षणमात्र भी मेरे लिये युग के समान है"।

इतना कहते कहते मयनासुन्दरी के नेत्रो से अश्रु की झडी लग गई। श्रीपाल कुमार ने दृढालिङ्गन करके उसके आसू पोछते हुए कहा—

"प्रिये! तुम्हारे इस प्रकार हठ करने से मै अपने कार्य्य साधन मे कभी सफल नहीं हो सकूंगा। स्त्री को विदेश मे साथ लेजाने से बडा पग-बन्धन होता है, मै तुम्हे साथ लेजा कर तो और भी बन्धन मे पडूगा, अतएव तुम यही रह कर माता की सेवा करो। मै यथाशक्ति शीघ्र ही लौटने की चेष्टा करूंगा"।

इस प्रकार अनेक भांति से मयनासुन्दरी को समझा बुझा कर श्रीपाल ने शान्त किया। और तब माता से मंगल तिलक

लगवा कर तथा मयनासुन्दरी से विदा होकर कुमार निवास-भवन से बाहर आये। वहा उन्हे मामाश्वसुर राजा पुण्यपाल मिले। उन्होंने श्रीपाल को कहीं बाहर जाने को उद्यत देख पूछा—

"कुमार! आज आप कहाँ के लिये तैयार हुये है? हमे छोड कर आप कहा जा रहे है? हमारा सब सुख और सन्तोष आपके साथ है। यदि आपको अपने पिता के राज्य का ध्यान हुआ हो तो आओ, मेरे साथ आओ, मै प्रजापाल महाराज की सारी सैन्य आपके आधीन करा दू, और आप उससे विजय-लक्ष्मी लाभ करे"।

श्रीपाल कुमार बोले—

"मातुल! यह आपका कथन उचित ही है पर मै श्वसुर के साहाय्य से अपना विगत वैभव और राज्य नहीं लेना चाहता। मेरी इच्छा है कि अपने भुजबल द्वारा अपना देश जीतू और ससार मे स्वनामख्याति लाभ करू। आप मेरी इस पवित्र साधना मे बाधा उपस्थित न करे"।

तब राजा पुण्यपाल से विदा होकर कुमार आगे बढ़े। और चलते चलते नगर के बाहर हो गये।

मार्ग मे अनेक वन-उपवन पार करते हुए एक परम रमणीक वन मे पहुँचे। वहा अनेक प्रकार के सुन्दर सुन्दर वृक्ष थे विविध प्रकार के कुसुम विकसित हो रहे थे। त्रिविध समीर हृदय को शीतल कर रही थी।

वहां श्रीपाल कुमार ने एक विद्याधर को एक सुन्दर चपक वृक्ष के नीचे बैठे हुए ऊपर को हाथ उठाये एक विद्या साधते हुए देखा। श्रीपाल उसे कोई उत्तम पुरुष जानकर उसके पास जाकर

खडे रहे। जब वह अपना ध्यान कर चुका तब श्रीपाल को उसने प्रसन्न होकर बैठने को आसन दिया और कहा—

"आप मुझे कोई भाग्यशाली पुरुषश्रेष्ठ प्रतीत होते है इसलिए आपके आगमन से मुझे परम प्रसन्नता हुई क्योकि मै एक विद्या के साधन मे सलग्न हू पर वह विना उत्तरसाधक के मेरे चित्त की अस्थिरता से सिद्ध नही होती। यदि आप मेरे उत्तर-साधक बने तो मेरी सफलता मे सन्देह न रहे"।

श्रीपाल इसके लिए सहर्ष तैयार हो गये। और वह विद्याधर अपनी साधना मे सलग्न हुआ।

कुछ काल पश्चात विद्याधर ने परम प्रसन्न होकर नेत्र खोले और कृतज्ञता प्रकाश करता हुआ बोला—

'नर श्रेष्ठ मै आपका अत्यन्त कृतज्ञ हू आपके पुण्य प्रताप तथा तेज से मै निर्विघ्न विद्या सिद्ध कर सका हू। इस कारण मै आपको यह दो जडी देता हू जिनका नाम 'जलतारिणी' एव 'शत्रु सहारिणी' है। पहली मे यह गुण है कि वह अगाध जल मे भी डूबने से रक्षा करेगी, दूसरी मे यह गुण है कि वह शत्रु के शस्त्रास्त्रो से रक्षा करेगी। शत्रु के आयुध इसके धारण करने वाले को कुछ क्षति नही पहुँचा सकते"।

श्रीपाल ने उन दोनो जडियो को सहर्ष स्वीकार किया।

तब वह विद्याधर और श्रीपाल कुमार दोनो आगे बढे। आगे चल कर उन्हे एक और व्यक्ति मिला जो स्वर्ण-रसायन-साधना मे तल्लीन था। वह विद्याधर को देख कर कहने लगा 'मै अनेक प्रकार से यत्न करने पर भी अभी 'धातु-विद्या' सिद्ध नही कर सका हू। तब श्रीपाल ने कहा—"आप एक बार मेरे देखते हुए विद्या-साधन कीजिये"।

कुमार के ऐसा कहने पर धातुवादी ने रसायन सिद्धि प्रारम्भ की और कुछ ही काल मे वह सफल होकर प्रसन्नता से नाच उठा। श्रीपाल ने देखा कि सोने का एक बड़ा 'पुरसा' उसके हाथ मे आगया है, तब वह हर्षित होकर श्रीपाल को सोना देने लगा पर उन्होने कहा 'विदेश मे मै यह भार साथ लेजा कर क्या करू गा'। परन्तु उनके बहुत मना करने पर भी उसने एक बडा सा टुकडा उनके वस्त्र के छोर मे बाध ही दिया।

श्रीपाल कुमार उन विद्यासाधको से विदा होकर आगे बढे। बहुत सा मार्ग व्यतिक्रम कर के वे भरुअच नाम के नगर मे पहुँचे। वहा जाकर उन्होने कुछ स्वर्ण को बेच कर अपने पहनने के लिए नवीन स्वच्छ वस्त्र मोल लिये और कुछ स्वर्ण मे उन दोनो जडियो को भरवा कर ताबीज बना कर दोनो बाहुओ पर धारण किया। पश्चात् कुछ काल भ्रमण करके नगर की शोभा देख कर एक विश्रामस्थल मे विश्राम के लिए बैठ गये। पर उन्हे अभी बैठे हुए कुछ ही समय हुआ था कि अस्त्रधारी एक समूह ने आकर उन्हे चारो ओर से घेर लिया।

(६)

(धवल सेठ)

श्रीपाल को वहा इस प्रकार सैनिको मे घिरा हुआ छोड कर पाठको को अब हम एक नवीन सेठ से परिचय कराते है।

कुसुबी नगरी के एक महाधनिक 'धवल' नाम के कोटिध्वज सेठ उस समय व्यापार कार्य के लिये भरुअच आये हुये थे। वे जो व्यापारिक वस्तुए अपनी साथ कुसुबी आदि नगरो से लाये थे उनमे उन्हे द्विगुण लाभ हुआ। कई करोड रुपये की

वृद्धि हुई। जिस काल की बात हम लिख रहे हैं उस समय में भरूअच नगर एक बड़ा बन्दरगाह था। अस्तु विदेश गमन के लिये जलयात्रा करने वाले व्यापारी तथा यात्री आदि यहाँ से भी बड़ी संख्या में बाहर जाया करते थे। धवल सेठ ने भी विदेश-गमन के लिए विविध प्रकार के जलयान तैयार कराये। एक ६० स्तम्भ का विशाल काय वाहन अपनी सवारी के लिये तथा सोलह सोलह स्तम्भ के ६८, द्रणासी एक सौ, बेगडी जाति के १०८, द्रोणमुख ८४, शिल्प जाति के ५४, खर्प जाति के ३५, तथा आवर्त जाति के ५० और भी युद्ध करने वाले आदि सब मिला कर ५०० जलयान तैयार कराये। तथा उन्हें सब प्रकार की आवश्यक सामग्री से सजा कर ठीक कर दिये। युद्ध करने वाले जलयान दस शहस्र वीर योद्धाओं से भर दिये गये। सेठ के यान पर बडी शान से रंगीली ध्वजा फहराने लगी जब प्रत्येक यान प्रबन्धकर्त्ता, दिशानिदर्शक और सञ्चालकों से सब प्रकार ठीक कर दिये गये तब सेठ जी के विशाल यान से प्रस्थान सूचक तोप दागी गई और सब यानों से तैयार होने की सूचना से उसका उत्तर देकर लङ्गर उठाये जाने लगे पर विधि का अद्भुत वैचित्र ! लङ्गर टस से मस न हुये। वे जैसे थे उसी प्रकार स्थिर रहे। मानो उनका यन्त्र बल द्वारा स्तम्भन कर दिया गया हो। यह देख कर सब यानों में बडी खलबली पडी। स्वयं सेठ यह देखने को अपने यान के बाहर निकल आया कि यानों के प्रस्थान में विलम्ब क्यों हुआ, पर सारे यानों को पाषाण की सदृश स्तम्भित देख कर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह उच्चस्वर से कहने लगा 'अहो ! यह कैसा अद्भुत व्यापार सघटित हुआ' ! तब उसने अधिष्टात्री देवी के मन्दिर मे जाकर प्रार्थना करके इसका कारण पूछा, जिसे सुन कर देवी के पुजारी जी महाराज ने कहा—

'यह किसी देवता की कोपदृष्टि है जिसने इस प्रकार यान स्तम्भन कर दिया है। इसके दोष निवारण के लिए एक बत्तीस लक्षण सयुत पुरुष की बलि देनी चाहिये'।

यह सुनकर सेठ नगर के राजा के पास पहुँचा। और उसे सब वृत्तान्त साद्यन्त सुनाया। तब राजा ने उसे किसी ऐसे पुरुष को बलिदान के लिये ले जाने की आज्ञा दी जो विदेशी हो तथा वहा उसका कोई सगा सम्बन्धी न हो।

राजा से यह आज्ञा पाकर सेठने अपने सुभटो को आज्ञा दी कि यदि कोई उत्तम लक्षण वाला विदेशी पुरुष नगर मे दृष्टि पडे तो उसकी मुझे सूचना देकर पकड लाओ। देवी की बलि के लिये चाहिये। तब वे धवल के सैनिकगण भिन्न भिन्न भागो मे होकर नगर को खोजने लगे। उनमे से किसी सुभट ने श्रीपाल को देखकर सेठजी को उसकी सूचना दी और सेठ से आज्ञा पाकर सैनिको के एक झुण्ड ने श्रीपाल को घेर लिया।

(१०)

'जय लाभ'

श्रीपाल ने जब अपने चारो ओर अस्त्र धारी सैनिको का समूह देखा तब बडे विस्मय से उन्होने उनसे पूछा —

भाई ! क्या तुम बता सकते हो कि निरपराध और अकारण मुझे इस प्रकार घेर लेने मे तुम्हारा क्या अभिप्राय है' ?

तब उनमे से एक अवज्ञा भरे स्वर मे बोला —

'अरे ! क्या तू नहीं जानता तेरी आयु की अवधि अब नि शेष हो चुकी है ? किसी दैवी कोप से धवल सेठ के वाहन स्तम्भित हो गये है उसी देवता को धवल धीग तेरा बलिदान चढायगा'।

उपाय न देख वह श्रीपाल के चरणों मे लोट गया और अनेक प्रकार से उनकी वीरतादि का स्तुति गान करने लगा।

तब श्रीपाल ने कहा—

"श्रेष्ठिवर! आपने किस लिए इतना आडम्बर किया और इतना जननाश कराया? मेरे बन्धन मे आपको क्या ऐसा अपरिमेय लाभ था जिसके कारण आपने इतने प्राणियों का बलिदान चढाया?"

यह सुन कर सेठ ने भय से कापते हुए हाथ जोडे हुए सारा वृत्तान्त साद्योपान्त सुनाया। और कहा—"श्रीमन मुझसे यह अपराध अज्ञात रूप मे हुआ है अतएव मै क्षम्य हू। अब किसी प्रकार कृपा करके स्तम्भित वाहनो को चला दीजिये। मुझ पर अपार अनुग्रह होगा।"

श्रीपाल ने कहा—

"वाहनो को चला देने के उपलक्ष मे आप मुझे क्या देगे?"

सेठ—"मै कुछ देने योग्य तो नहीं हू पर सेवा मे एक लक्ष स्वर्णमुद्रा समर्पित करूंगा।"

यह सुन कर सेठ के साथ जाकर श्रीपाल उस अग्रगामी वाहन पर चढ गये और हृदय मे इष्टदेव नवपद का स्मरण करके उन्होंने बडे शब्द से शखनाद किया, जिसे सुनते ही मिथ्याभिमानी देवता भयभीत होकर वाहनो को छोड कर भाग गया, और वाहन सहसा सञ्चालित हो उठे।

यह अद्भुत व्यापार देख कर सेठ के मन मे यह उत्कट इच्छा हुई कि किसी प्रकार श्रीपाल मेरे साथ चले। अत वह श्रीपाल को एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा देकर सविनय कहने लगा—

" श्रीपाल उस अग्रगामी वाहन पर चढ गए और हृदय में इष्ट-देव नवपद का स्मरण करके उन्होने बडे शब्द से शङ्खनाद किया "

पृ० स० ४१

"श्रीमन! आप कोई बड़े भाग्यशाली पुरुष हो। मेरे दस सहस्र सेवक हैं और मैं प्रत्येक को एक सहस्र मुद्रा मासिक वेतन देता हूं और वे सब अच्छे लडाके भी हैं, पर आपके सामने ठहरने का किसी को भी साहस न हुआ। मैं आपकी वीरता पर मुग्ध हूं और चाहता हूं कि आप मेरे साथ चलें और जो मासिक मांगे मैं देने के लिए तैयार हूं।"

श्रीपाल ने कहा—

सेठ जी! आपके दस सहस्र सुभट जिस कार्य्य को करेंगे मैं अकेला ही उसके करने के लिए तैयार हूं पर जितना मासिक आप दस सहस्र सुभटों को देते हैं उतना मुझे अकेले को दीजिये।

तब सेठ जी ने कुछ विचार कर अद्भुत मुद्रा से कहा—

'वीरवर! हम वणिक लोग बिना हिसाब कोई भी कार्य्य नहीं करते। मैं अपने सब सुभटों को एक करोड स्वर्णमुद्रा मासिक देता हूं, इतना सब एक ही पुरुष को देते हुए छाती फटती है।'

यह सुनकर कुमार ने कुछ हंस कर कहा—

"सेठ जी! मैं भी आपका सेवक बन कर नहीं चलना चाहता क्योंकि विदेश में पराधीन बनकर जाना व्यर्थ है और सेवक को स्वाधीनता कहां? मैं चाहता हूं कि स्वतन्त्र रह कर विदेश भ्रमण करूं और देशदेशान्तरों की नवीन वस्तुएं देख कर तथा प्रकृति के अनूठे दृश्यों की छटा देख कर जीवनानन्द एवं नयनानन्द लाभ करूं। इसलिए आप मुझसे भाडा लेकर अपने वाहनों में मुझे स्थान दीजिये।"

यह सुनकर सेठ के हर्ष का पार न रहा। और उसने श्रीपाल को एक सौ स्वर्ण मुद्रा मासिक किराये पर अपने वाहनों में स्थान

देना स्वीकार किया जिसे श्रीपाल ने स्वीकार किया। और उनको एक वाहन के ऊपरी भाग मे एक उत्तम सुसज्जित कमरे मे स्थान दिया गया।

वाहन धीरे धीरे चल कर निःसीमसागर की उत्तुङ्गतरङ्गो के साथ क्रीडा करने लगे।

(११)

'भाग्य-विकास'

अनेक प्रकार के जलचर जीवो को देखते हुए और सागर की उत्ताल तरङ्गो के दृश्या का आनन्दानुभव करते हुए श्रीपाल कुमार बडे उल्लास मे जलयात्रा कर रहे है।

कुछ काल पश्चात् वाहन बब्बरकोट के किनारे पर पहुँचे। तब धवल ने जल ईधन आदि सामग्री लेने के लिए वाहनो को वहा ठहराया। वहा धवल सेठ के साथ आने वाले अन्य व्यापारियो ने भी उतर कर अपने कैम्प आदि खडे किये।

यह सब देख सुनकर बब्बराधीश के कर लेने वाले राजकर्मचारी वहा आये और धवल सेठ के पास जाकर 'राज्यकर' मागने लगे। तब धवल ने वृथाभिमान मे अपने सुभटो को उनको भगा देने की आज्ञा दी। धवल के सुभटो ने उन्हे मारकर भगा दिया। वे सब भागकर बब्बर राज्य दरबार मे पहुँचे और वहा धवल के कर न देने का तथा अपने पिटने का सविस्तार वृत्तान्त कहा। सब बात सुनकर राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना लेकर धवल पर चढ दौडा। उधर जब धवल ने भी राजा को सेना सहित आते देखा तब अपने दस हजार सुभटो को तैयार होकर भिड जाने की आज्ञा दी।

अत घोर युद्ध आरम्भ हुआ। उभय पक्ष के अनेक वीर लड़ लड कर मरने लगे। लोथ पर लोथ गिरने लगी। हताहतो का ढेर लग गया। दोनो तरफ से खूब डटकर युद्ध हुआ। धवल के बहुत से सैनिक काम आये राजा के भी बहुत सिपाही मारे गये। पर अन्त मे धवल के सैनिको के पैर उखड गये और वे इधर उधर को भागने लगे। जिसको जिधर मार्ग सूझा वह उधर को ही भागा। यह देख बब्बर के सैनिको ने जयनाद किया। और राजाज्ञा से जाकर धवल की उल्टी मुश्क कस कर एक वृक्ष के साथ बाध दिया। और वाहनो का द्रव्यादि लूट कर राजा ने ससैन्य अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

अपनी सारी धन सम्पत्ति को इस प्रकार लूट ले जाते हुए देख धवल सेठ शोकार्त्त होकर रोने लगा।

तब श्रीपाल कुमार ने पास जाकर कहा—

"क्यो सेठजी! अब आपके वे सब सुभट कहा गये? और आप भी यहा वृक्ष से बँधे पडे हो। यदि आप उन सब सुभटो के बदले मुझे एक करोड मुद्रा देते तो क्या कभी आपको ऐसा असह्य दुःख सहना पडता"।

इस पर धवल ने कहा—

"कुमार अब आप क्यो जले को और जलाते हो?"

कुमार बोले —

"यदि मै आपका सब विगत धन वैभव लौटा दू और राजा को आपके पास बाध लाऊ तो आप मुझे क्या देगे"।

यह सुन कर सेठ हर्षित हो कहने लगा—

"मै आप को इसके उपलक्ष मे अपनी सब धन सम्पति मे से आधी तथा पाच सौ वाहनो मे से आधे वाहन अर्पित कर दूगा।"

तब श्रीपाल ने साक्षी सहित उक्त विषय का प्रतिज्ञापत्र सेठ से लिखवाया और फिर धनुष-बाण लेकर बब्बराधीश के पीछे चला।

कुछ दूर द्रुत गति से चलने पर श्रीपाल ने बब्बर राज महाकाल को अपने दल बल सहित धवल की लूटी हुई सामग्री लिये जाते हुए देखा। उन्हें देख कर श्रीपाल ने सिंहनाद किया और उच्च स्वर से कहा—

"हे बब्बराधीश ! इस प्रकार एक वणिक को लूट लेने मे राजाओ की वीरता प्रदर्शित नहीं होती यह तो क्षुद्र लुटेरो का कर्म है आपको तो केवल राजोचित दण्ड ही देना चाहिये। अब आइये पीछे फिर कर जरा मुझसे भी दो दो हाथ करते जाइये। आप की शक्ति देखना चाहता हू"।

ऐसे तीव्र वचन सुनकर राजा ने श्रीपाल की ओर देखा। देखा तो बालसूर्य के सदृश एक वीर युवक हाथ मे गाण्डीव लिये युद्ध के लिए आह्वान कर रहा है। उसे देखकर राजा ने कहा—

"युवक ! मुझे तुम्हारे नवयौवन एव सौन्दर्य पर दया आती है। तुम्हे क्यो ऐसी छोटी अवस्था मे भी अपना जीवन प्रिय नही है। मै चाहता हू कि तुम अपने इस सुन्दर शरीर को लेकर वापस लौट जाओ और वृथा भयङ्कर समराग्नि मे कूद कर अपने प्राण न दो"।

श्रीपाल ने कहा—

"यदि यौवन और सौन्दर्य की बाते करनी थी तो फिर रानियो के वस्त्रो मे मुख लपेट कर क्यो न रनवास मे पडे रहे ? क्यो इस प्रकार वीर बन कर युद्ध क्षेत्र मे अवतीर्ण हुए थे ? राजन !

यह बात बनाने का अवसर नहीं है यदि युद्ध की क्षमता नहीं है तो अपनी खड्ग मुझे देकर सेठ का दासत्व स्वीकार कीजिये।"

यह बात महाकाल के शरीर में मानो अग्नि बाण होकर लगी, उसने क्रोधान्ध होकर समस्त सेना का एक ही साथ श्रीपाल पर हल्ला बोल दिया। पर धन्य है श्रीपाल का वीरत्व! वे अपने स्थान से तनिक भी विचलित न हुए और एकही स्थान पर जम कर ऐसी बाण वर्षा की कि राजा की सारी सेना ढक गई। राजा की ओर से जितने आयुधों का उपयोग हुआ वे सब श्रीपाल के शरीर पर पुष्प की तरह लगते गये। उस अकेले वीर युवक ने राजा की समस्त सेना को मथ डाला। सहस्त्रों हताहतों का ढेर लग गया। बडा नर नाश हुआ। शरवर्षा करते हुए श्रीपाल ऐसे प्रतीत होने लगे मानो रुद्र अनेक करों द्वारा नर-संहार करने पर तुले हुए है। अस्तु जब राजा की सेना के पैर उखड गये और सब इधर उधर भागने लगे तब श्रीपाल ने जाकर राजा को बांध लिया और सब सामग्री सहित राजा को धवल सेठ के पास ले गया। वहां पहुँच कर श्रीपाल ने धवल सेठ के बंधन खोल दिये। तब सेठ खड्ग हाथ में लेकर राजा महाकाल को बध करने के लिये दौडा। पर श्रीपाल ने उसे मार्ग में ही रोककर कहा—"बस सेठ जी बस आपकी वीरता देखी जा चुकी है आप कृपा कर अपनी धन सम्पत्ति संभालिये। राजा बध योग्य नहीं है क्योंकि नीति शास्त्रों में अभ्यागत, शरणागत, बन्दी (जो बन्धन में हो), रोगी, भागता हुआ, वृद्ध और बालक ये सात बध योग्य नहीं कहे गये है"।

ऐसा कहकर कुमार श्रीपाल ने राजा महाकालके बंधन खोल दिये। और अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों से उनका सम्मान किया।

राजा महाकाल इन सब घटनाओ पर बडे विस्मय विमुग्ध हुए। उनके हृदय मे श्रीपाल के प्रति एक अपूर्व प्रेम का भाव उदित हुआ। तब उन्होने श्रीपाल से कहा—

"महानुभाव ! आप वीर पुरुष है। आपके जैसे ही नर रत्नो को वक्षस्थल पर धारण कर मेदिनी धन्य हुई है। मै भी आपके करो द्वारा सम्मानित होकर अपने को कृतकृत्य समझता हू। अब कृपाकर आप मेरे वास स्थान पर चल कर उसकी शोभा बढाइये और मुझे अनुगृहीत कीजिये"।

यह सुनकर सेठ ने श्रीपाल से कहा "कुमार हमको अभी दूर देश रत्नद्वीप को जाना है अब अधिक विलम्ब करने से व्यापार मे भी हानि होने की सम्भावना है। अतएव अब आप का इधर-उधर जाना ठीक नहीं है"।

यह सुनकर श्रीपाल कुमार ने कहा—

'सेठ जी ! किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के प्रेमानुग्रह को ग्रहण न करना अनुचित है। अस्तु मै अपने ढाई सौ वाहन और आधी सम्पत्ति आपकी रक्षा मे छोड़कर महाराज के साथ जाता हू। आशा है कि मै जब तक लौटूगा आप तब तक यहीं विश्राम करेगे"।

इतना कह कर श्रीपाल कुमार ने महाराज महाकाल के साथ बब्बर कोट की ओर प्रस्थान किया।

हम यह लिखना भूल गये कि श्रीपाल कुमार ने धवल सेठ के उन सैनिको को सम्मान पूर्वक अपने पास रख लिया था जिनको युद्धकाल मे भाग जाने पर सेठ ने अपने पास रखना स्वीकार न किया था। उनको श्रीपाल ने अपने आधे वाहनो की रक्षा पर नियत किया। अस्तु,

बडे ठाट बाट और धूम धाम मे श्रीपाल का स्वागत राजा महाकाल ने कराया। चारो ओर से नगर पुष्पमाल आदि से सजाया गया, सक्षेप मे यह है कि जो नगर मार्ग सेना आदि की सजधज के साज हो सकते है उनमे किसी भी प्रकार की कमी नही रक्खी गयी।

राजभवन मे पहुँचने पर श्रीपाल का बडे हर्ष और धूमधाम से स्वागत किया गया। अनेक प्रकार की सजावट और रमणीयता देख कर कुमार भी मुग्ध हो गये। खास निवास मे पहुँचने पर राजा महाकाल ने अपनी रानी और पुत्री को बुलाया और उनके आजाने पर श्रीपाल से कहा --

"महानुभाव! आपके वीरोचित साहस और अतुल बल वैभव को देख कर मेरी इच्छा हुई है कि मै अपनी कन्या मदनसेना को आपके दासी पद पर नियत करू। मै आशा करता हू कि आप मेरी प्रार्थना को अस्वीकार न करेगे और इसे अनुचरी रूप मे ग्रहण करके मेरी गौरव-वृद्धि करेगे"।

इस पर श्रीपाल ने कहा—

"राजन! आपकी आज्ञा मै शिरोधार्य करता हू, पर एक अज्ञात कुल शील पुरुप को कन्यादान करना उचित नही। आप विना मेरे परिचय के किस प्रकार अपनी कन्या का जीवन मुझे समर्पित करते है ?"

राजा बोले—"वीर श्रेष्ठ! जो वस्तु स्वय अपने गुण दोष का प्रकाश करती है उसके परिचय की आवश्यकता नही। क्या आपके वीर कर्म्म ही आपके उच्चवश-सम्भूत होने के यथेष्ठ प्रमाण नही है, ऐसी दशा मे मै आपके परिचय की और कुछ भी आवश्यकता नही देखता"।

इस पर श्रीपाल कुमार अधोमुख होकर मौन हो रहे। तब राजा महाकाल ने शुभावसर देख कर अपनी कन्या मदनसेना का श्रीपाल से पाणिग्रहण कराया। कुछ दिन तक श्रीपाल वहीं नव वधू के साथ आनन्दोत्सव मे मग्न रहे।

जब इस प्रकार रहते कुछ काल बीता तब एक दिन श्रीपाल ने राजा से विदा होने की आज्ञा मागी। राजा भी उनके शीघ्र गमन का कारण जानते थे। अस्तु उन्होंने श्रीपाल को यौतुक मे अनेक प्रकार के धन सम्पति, रत्न राशि, दास दासी नट नटी और सेना देकर विदा किया। साथ मे अनेक प्रकार के विशाल-काय स्वर्ण और रूपा के काम के जलयान भी यौतुक मे दिये। इस अपार धन सामग्री सहित पुत्री को राजा समुद्र तट तक पहुँचाने गये और अनेक प्रकार की स्त्रीजनोचित शिक्षा देकर राजा वापस लौट गये। तब कुमार श्रीपाल अपनी पत्नी सहित स्वर्ण खचित विशालकाय वाहन मे सवार हुये और रत्नद्वीप के लिये सब वाहनो ने प्रस्थान किया।

श्रीपाल कुमार की इस अतुल धन सम्पत्ति शक्ति और दास दासियो के समूह को देख कर धवल के नीच हृदय मे अपार ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा कि यह मेरे साथ अकेला ही चला था, जिस समय यह मुझे पहले मिला था उस समय इसके पास छदाम भी नहीं थी किन्तु थोडे ही काल मे यह अपार वैभव का स्वामी हो बैठा है। विना विशेष परिश्रम ही यह मेरी आधी धन सम्पत्ति तथा मेरे आधे वाहनो का मालिक हो गया। जो द्रव्य मैने अनेक छल और कौशल द्वारा अनेक कष्ट उठा कर अब तक उपार्जित किया वह इसने मेरी क्षुद्र सी भूल के कारण अनायास ही आधा बाट लिया और राजजामातृ बन बैठा। अब

वह अनेक प्रकार के नृत्य गान का आनन्द लेता हुआ अपनी पत्नी सहित रसरङ्ग में निमग्न है अत न जाने मेरा पिछले मास का किराया भी देगा या नहीं। कहीं ऐसा न हो कि मेरे मांगने पर वह कुपित हो उठे और मेरे शेष वाहन तथा धन सम्पत्ति भी छीन ले। अरे! खेद! मैं इसे अपने साथ न लेता तो अच्छा रहता। पर जो हो गया उसके सोच में अब क्या लाभ है। अच्छा चलकर देखें तो सही फिर जैसा अवसर होगा देखा जायगा।

मनही मन ऐसी दुश्चिन्ता कर धवल श्रीपाल कुमार के पास वहा पहुँचा जहा कुमार राग रङ्ग में मग्न हो रहे थे। वे धवल सेठ को दूर से ही आते देख उसके मन का भाव ताड गये। उन्होंने बडे आदर सत्कार से सेठ जी का स्वागत किया और उन्हें अपनी बगल में आसन दिया। कुछ कुशल प्रश्न और इधर उधर की वार्ता के पश्चात् श्रीपाल कुमार ने सेठ जी को एक मास का भाडा गिनवा दिया। सेठजी उसे लेकर सहर्ष अपने वाहन में वापस आगये। परन्तु ईर्ष्या का अकुर जो सेठ जी के हृदय में जमा वह बढकर पल्लवित होने लगा। आगे चलकर इस पर कैसा विषम फल लगता है सो पाठक आगामि परिच्छेदो में जान सकेंगे।

कुछ काल पश्चात् वाहन रत्नद्वीप के किनारे जा पहुँचे।

(१२)

'रत्न द्वीप'

रत्नद्वीप के किनारे पहुँच कर वाहनो के लगर डाल दिये गये। सब के तम्बू आदि किनारे पर तन गये। श्रीपाल कुमार के कारचोबी के काम के कैम्प खडे किये गये। अनेक प्रकार की सजावट की सामग्रियो से वे सुसज्जित किये गये। उन पर विविध

रङ्ग के ध्वजा पट फहराने लगे। कुमार श्रीपाल उन कैम्पो मे आनन्द से नृत्यगान और वाजित्र का आनन्दानुभव करने लगे। विविध प्रकार की नाट्यलीलाए होने लगी। इतने मे धवल सेठ ने आकर कहा—

"कुमार यह रत्नद्वीप नाम का बडा रमणीय प्रदेश है। इसमे व्यापार का अच्छा अवसर है। आप भी अपने ढाइसौ वाहनो की व्यापारिक सामग्री निकाल कर बेच दीजिये। द्विगुण दाम हो जायेंगे। यहा अन्य सामग्री का क्रय कीजियेगा"।

यह सुनकर श्रीपाल कुमार ने कहा—

"सेठजी! मेरी सब सामग्री का आपको अधिकार है। आपही क्रय-विक्रय कीजिये। जो लाभालाभ हो उसका लेखा मात्र मुझे दिखा दीजियेगा। व्यापार के कार्य मे आप अनुभवी है। इस कारण कृपाकर इसका प्रबन्धभार आप अपने ऊपर ही लीजिये।

यह सुनकर धवल सेठ मन ही मन प्रसन्न हो उठा। उसने मन मे सोचा यह श्रीपाल को हानि पहुँचा कर अपने लाभ करने का अच्छा अवसर है। यदि हानि हुइ तो कुमार की और लाभ हुआ तो मेरा। यह सोच कर उसने कुमार का कथन सहर्ष शिरोधार्य किया और वहा से उठ गया"।

श्रीपाल कुमार इस प्रकार व्यापार कार्य से निश्चिन्त होकर अपनी पत्नी सहित बैठे हुए विविध नाट्य लीला देख रहे थे तब एक अश्वारोही उनके कैम्प के समीप से होकर निकला। विविध प्रकार के मनोहर वाजित्र सुनकर वह वहा रुक गया। और सुमधुर वाजित्र ध्वनि सुनने लगा। कैम्प के सम्मुख होने से वह श्रीपाल की दृष्टि पडा-उन्होने उसे नवागुन्तक जान कर अन्दर

बुलवा लिया और बडे आदर मान से बैठने के लिए उचित आसन दिया। जब नाट्य लीला समाप्त हो चुकी तब श्रीपाल कुमार ने आगुन्तक पुरुष से कहा—

"हे महानुभाव! आप कहा से और किस कारण से आ रहे है? । यदि इस प्रदेश मे कोई नवीन घटना सुनी हो तो कृपया मनोरञ्जनार्थ सुनाइये"।

उसने कहा—"मै आपकी सेवा मे एक नवीन घटना का वर्णन करता हू कृपया ध्यान देकर सुनिये। इस प्रदेश को रत्नद्वीप कहते है। इसमे रत्नसानु पर्वत की एक बडी दीर्घ श्रेणी है। उससे आवृत एक रत्नसञ्चया नाम की परम रमणीक एव दर्शनीय नगरी है। मै वहीं का निवासी हू तथा मेरा नाम जिनदास है। उसमे विद्याधरो का कनककेतु नाम का बडा कीर्तिवान और बलशाली राजा है। उसकी रत्नमाला नाम की महासुन्दरी पटरानी है। उसके दिव्य सौन्दर्य धारी महा तेजस्वी चार पुत्र है जिनके नाम क्रमश कनकप्रभ, कनकशेखर, कनकध्वज और कनकरुचि है। उन चार पुत्रो पर एक महारूपवती लावण्यपूर्ण और सौन्दर्य की प्रतिमा सी एक कन्या है उसका नाम मदनमञ्जूषा है। वह रूप मे रति को, उज्वलता मे शशि को, और सुकुमारता मे सुमन-मञ्जरी को मात करती है। वह मानो सौन्दर्य्य की राशि है, सुषमा की निधि है और लावण्य की लहर है मनोहारिता मे त्रिभुवनमोहिनी है, माधुर्य्य मे सुधामाधुरी है और रसो मे शृङ्गार रस की धारा है। वह खञ्जननयनी है, कोकिलकण्ठी है और गजगामिनी है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह सर्वाङ्गपूर्ण सुन्दरी है वहा एक बडाभारी आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव भगवान का चैत्यालय है। एक दिवस वह राजकन्या

मदनमञ्जूषा आदीश्वर के मंदिर में पूजार्थ गई। वहां जाकर उसने भगवान की प्रतिमा की अत्यन्त मनोमोहिनी और नयनाभिराम अङ्ग रचना की। विविधवर्ण रञ्जित रेशमी आङ्गी पर रत्नाभरणद्वारा ऐसी अपूर्व छटा छागई कि दर्शक गण देख कर चकित हो गये। इतने में उसके—मदनमञ्जूषा के पिता कनककेतु भी भगवान के मंदिर में दर्शनार्थ आये। वे अपनी पुत्री की की हुई अङ्गरचना देख कर मुग्ध होगये। किंकर्तव्य होकर वे थोडी देर उसे देखते रहे। तत्पश्चात् उनके हृदय में मोह का प्रादुर्भाव हुआ और वे सोचने लगे कि मेरी कन्या संसार में अद्वितीय सुन्दरी, विदुषी और कलाकुशल है। साहित्य, सङ्गीत और चित्रणकला में यह अप्रतिम है। यदि इसके जोड का ही पति इसे मिले तो ठीक अन्यथा इसका जीवन निस्सार हो जायगा। ऐसा विचार करता हुआ राजा खडा रहा। इतने में मदनमञ्जूषा भी अङ्गरचना समाप्त कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर और नमस्कार कर मूलगुम्भार द्वार से बाहर निकली। उसके निकलते ही वहां एक आश्चर्य-व्यापार घटित हुआ। 'चर मर' शब्द करते हुए मूलगुम्भारे के द्वार स्वयं बन्द होगये। यह अद्भुत घटना देख कर राजा और उसकी पुत्री सब चकित रह गये और सोचने लगे कि हम से जिनेश्वर देव की कोई भयानक आशातना हुई है अन्यथा ऐसी विस्मयजनक घटना कभी न होती।

मदनमञ्जूषा सोचने लगी कदाचित् उत्तम रचना करके मैंने अपने रचना कौशल पर अनुचित अभिमान किया है, उसके फल स्वरूप मैं भगवान के दर्शन से वञ्चित कर दी गई हूं। राजा सोचने लगे अरे! यह मेरे ही दुष्कर्म का परिणाम है कि मूलगुम्भार द्वार बन्द हो गये। भगवान के मन्दिर में आकर मैंने अनुचित मोह किया। उसके ही दण्ड रूप में भगवान के दर्शन

रुके हैं। धिक्कार है मुझे ! मैंने चैत्यालय मे आकर ऐसी आशातना की। हा ! हा !! प्रभो ! मुझ नराधम का अपराध क्षमा कीजिये और दर्शनामृतपान से नव जीवन सञ्चार कीजिये। राजा इसी प्रकार चिरकाल तक द्विविधा मे पडे और मन ही मन अपनी कुभावना को धिक्कारते रहे। पर जब उसका कुछ फल न निकला तब उन्होंने तेला * व्रत धारण किया और कायोत्सर्ग मे खडे रहे। इसी प्रकार राजा को तीन दिन व्यतीत हो गये तब तीसरी रात्रि को अर्द्धकाल मे सहसा आकाश वाणी हुई कि हे 'राजा ! तुम किसी प्रकार चिन्ता न करो। मै जैनधर्माधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी हू। यह द्वार मैंने ही बन्द किये है। जिसके दृष्टि-पात से द्वार खुलेंगे वही तुम अपनी कन्या मदनमञ्जूषा का स्वामी समझना। अब तुम अपने राजमन्दिर को लौट जाओ मै एक मास मे ही तुम्हारे पास उस महापु ष को ले आऊगी। देवी के ये वाक्य सुनकर सब राजमन्दिर को लौट गये, और तब से अब तक उस महापुरुष के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे है। कल वह अवधि समाप्त होने वाली है। स्वामिन आपके दिव्य सौन्दर्य और तेज को देख कर मेरा हृदय बार बार यही कह रहा है कि श्रीमान ही हमारी सुकामना को सफल करने वाले है। और श्रीमान के दृष्टिपात से ही मदिर के द्वार खुलने वाले है। अतएव मेरी सविनय प्रार्थना है कि श्रीमान चैत्यालय तक साथ चल कर हमारी आशा सफल करे'।

यह सब वृत्तान्त कुमार ने महान उत्सुकता के साथ सुना। और सवारी के लिये अश्व लाने की आज्ञा दी। जब वे अश्व के उपस्थित होने पर जाने लगे तो उन्होंने धवल सेठ को बुला कर कहा—

* तीन दिवस निराहार व्रत रख कर चौथे दिन पारना स०

"सेठजी ! चलिये रत्नसञ्चया नगरी मे चल कर श्री जिनेश्वर देव के दर्शन करे और अपने पाप-बन्धन से मुक्त हो।"

सेठजी ने कहा—

"कुमार ! पाप-बन्धन से मुक्त होना तो बैठे ठालो को सूझता है। यहा तो ससार-बन्धन मे एक क्षण का भी अवकाश नही है आपके पास बिना मागे ही कामिनी और कञ्चन का ढेर हुआ जाता है, आप ही ऐसे कार्यो मे समय व्यतीत कर सकते है"।

यह सुन कर कुमार ने अपने अश्व की बाग मोडी और वह अश्व जिनदास के अश्व के साथ हिनहिनाता और नाचता हुआ कुमार को शुभ शकुन सूचना देता हुआ जाने लगा।

थोडा मार्ग चलने के पश्चात् कुमार और जिनदास दोनो चैत्यालय के बाहर पहुच गये, और अपने अश्व छोड कर जिन-मन्दिर के प्राङ्गण मे पहुँचे जहा अवधि का अन्तिम दिवस होने के कारण मनुष्यो का एक बडा समूह एकत्रित था। जिनदास के साथ एक नवागुन्तक व्यक्ति को देख कर उस भीड मे कुछ खलबली सी पड गई और सब लोगो ने इन दोना को चारो ओर से घेर लिया। तब जिनदास ने कहा—

"भाइयो ! अब आप सब महानुभावो को मूलद्वार के समीप एक एक करके क्रमश जाना चाहिये और अपनी-अपनी भाग्य-परीक्षा करनी चाहिये। ये मेरे साथ आये हुए महानुभाव सब के पीछे जाएँगे"।

यह सुन कर सब लोग क्रमश मूलद्वार के समीप जाने लगे पर द्वार जरा भी टस से मस नही हुए। अन्त मे जब एक एक करके सब जा चुके और केवल श्रीपाल कुमार ही रह गये पर

द्वार न खुला। तब सबने श्रीपाल कुमार से जाकर द्वार खोलने की चेष्टा करने को कहा।

श्रीपाल कुमार नत मस्तक हो कर मूलगुम्भार द्वार की ओर चले और उन्होंने ज्यों ही प्रणाम करके द्वार की ओर दृगपात किया त्यों ही 'अरड' शब्द करते हुए सहसा दोनों द्वार खुल गये। सब दर्शक महान आश्चर्य में पड़े हुए मूल द्वार की ओर बढ गये। यह सब अद्भुत व्यापार देख कर श्रीपाल कुमार के हर्ष मिश्रित विस्मय की सीमा न रही और उन्होंने गुम्भार द्वार के भीतर प्रवेश करके श्रीजिनेश्वरदेव की प्रतिमा का बड़े प्रेम, श्रद्धा और उल्लास भरे भावों से पूजन किया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सुख-सवाद राज-महलों में भी उड़ कर पहुँच गया और वहां से राजा आनन्द-पारावार में डूबा हुआ अपनी राजमहिषी पुत्री तथा सब कुटुम्बी जन सहित अविलम्ब मन्दिर में आ पहुँचा। यह उस समय की बात है जब श्रीपाल भगवान की नव अङ्ग पूजा में तल्लीन थे। अस्तु,

मूलद्वार को खुले हुए देख कर राजा के हर्ष की सीमा न रही और देवी की प्रतिज्ञा पूर्ति का ध्यान कर वह अतीवानन्दित हुआ। उसने अनेक प्रकार से भगवान की वन्दनार्चना की और तब बाहर प्राङ्गण में सकुटुम्ब आ बैठा। इतने में श्रीपाल कुमार भी भगवान के वन्दना उपासना से निवृत्त होकर वहीं प्राङ्गण में जहां अन्य सब जन उपस्थित थे आये और महाराज को प्रणाम कर बैठ गये। उनका दिव्य रूप देख कर राजा बड़े चकित हुए। वे कुछ क्षण मुग्ध दृष्टि से उन्हें देखते रह गये। पीछे बोले—"हे दिव्य तेजधारी महापुरुष! तुम्हारी अलौ-किक क्षमता को देख कर हम सब विस्मय चकित रह गये है,

तुम्हारे स्वर्गीय रूप और अतुल शक्ति देख कर तुम्हारा पवित्र परिचय पाने को हम सब महान उत्सुक है। अतएव आशा करते है कि तुम अपना परिचय देकर हमे अनुगृहीत करोगे"।

यह सुन कर कुमार बडे असमञ्जस मे पड़े। उन्हे यह कभी स्वीकार न था कि वे अपने मुख से अपने कुल आदि का कीर्त्ति-गान करे। इतने मे ही वहा एक बडी आश्चर्य-जनक घटना हुई जिसने उन सब व्यक्तियो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। गगन-मण्डल मे सहसा एक उज्ज्वल आलोक दृष्टि पडा और सब लोग एकदम ऊपर की ओर देखने लगे। शनै शनै वह आलोक वहीं मन्दिर के प्राङ्गण मे उतरा और देखते देखते उस आलोक मे से एक दिव्य तेजधारी मुनि निकले जिनके पीछे अनेक देवता सेवा की विविध सामग्री लिए निकले। तब प्रथम उन्होन जाकर भगवान का स्तुति गान किया और पीछे उसी प्राङ्गण मे देवनिर्मित सिहासन पर आकर विराजमान हो गये।

पाठक ये जैन ग्रन्थविश्रुत जघा चारण मुनि थे। उन्हे देखते ही राजा तथा श्रीपाल कुमार आदि ने वन्दना नमस्कार किया। मुनिराज ने यथोचित धर्मलाभ आदि देकर उपदेश प्रारम्भ किया। अपने व्याख्यान मे श्री नवपद मन्त्र की महिमा का वर्णन करके कहने लगे—

'हे भव्य जीव! इस नवपद मन्त्र के प्रभाव से, इसकी एकान्त उपासना मे ससार के बडे से बडे बधन से क्षण भर मे जीव मुक्तिलाभ करता है और इस ससार-सागर की भव जाल रूपी उत्ताल तरङ्गो को अबाधित रूप से पार कर जाता है। अतएव तुम भी सब इसकी उपासना द्वारा श्रीपाल कुमार सदृश सुख और शान्ति लाभ करने की चेष्टा करो'।

यह सुन कर सारी उपस्थित जनता ने हाथ जोड कर श्रीपाल का वृत्तान्त पूछा। उस पर मुनिराज ने श्रीपाल कुमार की साद्योपान्त रत्नद्वीप के किनारे तक आने की सारी कथा कह सुनाई और अन्त मे कहा—

"अब उसी पुण्यात्मा श्रीपाल कुमार के पुण्य प्रभाव ही से आपके इस जिनालय के मूलद्वार खुले है और आपको जिनेश्वर भगवान का दर्शन मिला है। ये ही वे महात्मा पुण्यशाली श्रीपाल कुमार है जो आप लोगो मे इस समय उपस्थित है"।

इतना कहकर जघा चारण मुनि जिस आकाश मार्ग मे आये थे उसी मार्ग से अपनी देव मण्डली सहित लौट गये।

यह सब विचित्र व्यापार देख और सुनकर राजा रानी राजकन्या तथा सब उपस्थित जन महा विस्मित तथा प्रसन्न हुए। राजा अपनी पुत्री के लिए ऐसा उच्च वश-सम्भूत तथा सर्व गुण सम्पन्न तेजस्वी वर पाकर अपने को धन्य मानने लगा। सर्वत्र कुमार श्रीपाल के अद्भुत रूप, बल, शक्ति तथा गुणो की चर्चा फैल गई। राजा बडे आदर मान सहित कुमार को अपने राजमन्दिर लिवा ले गये। और वहा बडे श्रद्धा मिश्रित प्रेम एव आदर भाव से श्रीपाल को कन्यादान दिया। महाराज कनककेतु ने शिविरो से कुमार की पहिली रानी भी अपने यहा बुलवा ली थी और अपनी पुत्रीवत् उसका भी आदर मान किया।

कुमार श्रीपाल अपनी दोनो पाणिग्रहीता रानियो सहित आनन्द उत्सव मे मग्न रहकर रत्नद्वीप मे कालक्षेप करने लगे।

(१३)

प्रस्थान

एक दिन राजा तथा श्रीपाल कुमार दोनो श्री जिनेश्वर देव के वन्दन निमित्त चैत्यालय मे गये। वहा भगवान की अनेक प्रकार के

नृत्य गान वाद्य आदि से पूजा उपासना करने लगे। उसी समय नगर-कोतवाल ने आकर महाराज को सूचना दी कि 'महाराज राज्यकर (दान) की चोरी करने वाले तथा बड़ी कठिनता से बन्धन में आने वाले चोर को हम पकड़ लाये हैं। इसे बार बार राजाज्ञा सुनाई गई तब भी इसने कर चुकाना स्वीकार न किया। वरन पकड़ने के लिये जाने पर इसने बल प्रयोग किया। हमारे पूर्ण शक्ति को व्यवहार में लाने पर इसने आत्म-समर्पण किया है। अब जो प्रभु की आज्ञा हो वह किया जाय'। यह सब सुनकर राजा बोले—'उसे चोर के लिये जो दण्ड विधान है उसी से दण्डित करो'। इस पर श्रीपाल कुमार ने कहा—'स्वामि यह आप क्या अनुचित करते हैं। प्रथम तो श्री जिनालय में किसी भी प्रकार की दण्ड-आज्ञा उचित नहीं दूसरे अपराधी को बिना अपराध का कारण पूछे उसके परोक्ष में ही दण्ड की आज्ञा देना सर्वथा अन्याय और राजनीति विरुद्ध है। कम से कम दोषी को सामने बुलाना तो चाहिये'।

श्रीपाल की बात सुनकर राजा ने अपराधी को उपस्थित करने की आज्ञा दी। धवल सेठ बन्दी की दशा में राजा के सम्मुख लाये गये। उन्हें देखते ही श्रीपाल कुमार ने आसन से उठते हुए महा विस्मय मिश्रित तीव्र स्वर में कहा—

"राजन ! यह मैं क्या देखता हूं। यह तो मेरे पितृव्य कोटाधिपति धवल सेठ हैं, इन्हीं के कृपाकटाक्ष से मैं इतना सम्पन्न और सौभाग्यशाली हो सका हूं, इन्हीं के कारण मैं रत्नद्वीप में आकर आपकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर सका हूं, और इन्हीं के लिये ऐसा दण्ड विधान ! कृपया इनको शीघ्र बन्धन-मुक्त कीजिये"।

राजा ने श्रीपाल कुमार के उक्त वचन बडी व्याकुलता से अन्त तक सुने। और तब उठ कर उन्होने स्वय धवल सेठ को बन्धन से मुक्त किया और उन्हे उचित आसन दिया तथा इस अज्ञानकृत अपराध के लिये क्षमा-याचना की।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् एक दिन धवल सेठ ने कुमार से आकर कहा—"कुमार! वाहनो की सारी सामग्री यहा बेचकर नवीन सामग्री यहा भर ली गई है और अब कोई दूसरा कार्य्य हमारे लिये शेष नहीं रह गया है, अस्तु अब यहा से चलना ही उपयुक्त है। जिस प्रकार आप कृपा करके सकुशल हमे यहा तक लाये है उसी प्रकार कृपया कुशलपूर्वक हमे स्वदेश पहुँचा दीजिये। यही हमारी आपसे प्रार्थना है"।

कुमार ने भी सोचा--माता, मयना और मातृभूमि को छोडे हुए भी अधिक समय बीत चुका है और यात्रा का उद्देश भी पूर्ण होगया। ऐसी दशा मे अनावश्यक समय व्यतीत करना उचित नहीं-यह सोच कर उन्होंने यात्रा की तैयारी करने की आज्ञा दी और आपने राजा के समीप जाकर विनम्र भाव से बिदा मागी।

बिदा की बात सुनकर राजा के हृदय पर मानो वज्रपात हुआ। परन्तु कन्या अन्त मे दूसरे घर जाती ही है यही सोच-कर वे आत्मसवरण करके बोले--

"पुत्र! सहर्ष जाओ। पर हमे विस्मृत न कर देना। मदन-मञ्जूषा के विषय मे हम तुम्हे कर्त्तव्य का उपदेश देना नहीं चाहते। पर इतना अवश्य कहेंगे कि वह बडे लाड प्यार से पाली हुई है उसकी उपेक्षा न करना"।

तब नृपति ने बडे धूमधाम से कुमार की यात्रा का प्रबन्ध कराया। अनेक प्रकार के शीघ्रगामी, नाना प्रकार की रमणीय सामग्रियो से सुसज्जित, तथा स्वर्णरूपाखचित जलयान कुमार की यात्रा के लिये दिये। तब कुमार तथा मदनमजूषा राजा से साश्रु नयन बिदा हुए। और सब वाहनो को ठीक करके कुमार ने शुभ मुहूर्त्त मे रत्नद्वीप से प्रस्थान किया।

(१४)

गुप्त-रहस्य

द्रुतगामी वाहनो के एक कमरे मे धवल सेठ सचिन्त्य मुद्रा से सिर नीचा किये तकिये के सहारे बैठा है। कुछ बडबडा रहा है। पाठक चुपचाप हमारे साथ आकर इसकी बात सुनिये। यह कितना ही धीरे कहे पर हमसे छिपा नहीं सकता। वह कह रहा है 'यह तो मैंने अपने हाथ से अपने पैरो मे कुल्हाडी मारी है यदि मै उसी समय लक्ष मुद्रा देकर बिदा कर दिये होता तो मुझे इतना मनस्ताप न भोगना होता। हाय मेरी ही समृद्धि, मेरे ही वाहन, मेरे ही सैनिक लेकर यह मेरा ही स्वामी बन बैठा। यह अकेला घर से निकला और इस समय अतुल धन तथा रूपराशि का स्वामी बना बैठा है। लक्ष्मी तो मानो अभागे के चरणो मे लोटती है। कैसी रूप लावण्य पूर्ण दो मदन की राते और प्रीति जैसी नव रमणिया पागया है। हाय! हाय!! मैंने आजीवन तेली के बैल की तरह श्रम करके यह धनोपार्जन किया और इसने तनिक देर मे सब आधा बॅटवा लिया। क्यो इस अधम को मैंने साथ लिया! खैर 'गतन्नशोचम' पर अब क्यो न मैं किसी उपाय से इसको मारकर सब झगड़ा ही मिटा दू?'

सहसा यह बात मुख मे निकलते ही धवल सेठ का मुख चमकित हो उठा। उसने अपने चार मित्रो को परामर्श के लिये बुला भेजा। कुछ काल प्रतीक्षा करने पर वे चारो ही उपस्थित हुए। तब सेठ ने अपने मनोगत भावो को उन्हे ज्यो का त्यो समझा दिया। सब सुनकर एक बोला —

"धन्य है सेठ जी आपकी विचार बुद्धि को! अपने जीवन-रक्षक के लिए भक्षक बनना आप जैसे ही सज्जनो को शोभा देता है। अरे कृतघ्न! जितने उपकार श्रीपाल ने तुम्हारे साथ किये है उनके लिए यदि कोई अन्य होता तो अपने शरीर की खाल की जूतिया बनाकर उन्हे पहिराता। परन्तु उपकार मानना तो दूर रहा तुम से उनकी ऋद्धि-वृद्धि भी सहन न हो सकी। उपकार के बदले अपकार करते भी तुम्हे लज्जा नही आती। परस्त्री, परधन पर कुदृष्टि डालना सज्जनो का काम नही है। अपने उपकार करने वाले दयालु सज्जनशिरोमणि वीर श्रेष्ठ एव धर्ममूर्ति कुमार श्रीपाल के तुम्हे चरण धो धो कर पीने चाहिये। क्या सेठजी उस समय को भूल गये जब उनसे क्षमायाचना करके बधनमुक्त हुए थे? तथा पाचसौ वाहन चलाने के लिये रो रो कर प्रार्थना करते थे। अथवा वह बब्बर महाकाल का कठोर बन्धन, सर्वस्वापहरण करके चल देना, याद नही है? यदि कुमार श्रीपाल न होते तो तुम्हारी क्या दशा होती? गली गली भीख न मागते फिरते अथवा रत्न सञ्चया की गलियो मे काला मुंह करा कर गधे पर चढे चढे न फिरते? एक बार तो उन सब बातो का विचार किया होता, पर छलनी के समान तुम केवल दुर्गुणो के ही आगार हो, गुण तुम मे कदापि नही ठहर सकते। ऐसी दुश्चिन्ताए करके तुम क्यो अकाल मे ही काल के गाल मे जाना चाहते हो। मूर्खाधिपति! तुम उसका

कुछ भी नहीं बिगाड़ सकोगे केवल तुम्हीं महा कष्ट मे पडोगे। हमारी इच्छा है कि हम से इस विषय मे तुम भविष्य मे कभी परामर्श न करो। और न ऐसी कुत्सित तथा घृणित कृति का हम तुम्हे कभी परामर्श दे सकते है। आशा है कि तुम अब भी सम्हलने का यत्न करोगे और ऐसी कुचेष्टाओ का त्याग करोगे।"

ऐसा कह कर वे चारो मित्र उस समय धवल सेठ को नाना प्रकार की उहापोह करते हुए छोड़ गये। इसी प्रकार अनेक दुष्कल्पनाओ तथा मनोविकारो मे धवल का बहुत सा काल व्यतीत हो गया। तब उन चारो मे से एक ने धवल के पास आकर कहा --

"सेठजी, आपने अपने सब अन्य मित्रो को देखा अब तक कैसी चुपडी चुपडी बाते करते थे, परन्तु समय पडने पर देख लिया कैसी उपदेशको जैसी लम्बी चौडी हाक कर चल दिये। मै सब प्रकार तन, मन, धन से सहायता करने को तैयार हू। हमारे ही आश्रय मे रह कर हमी पर प्रभुत्व स्थापन करे यह हम कभी सहन नहीं कर सकते। और इसमे अन्याय भी क्या है जब श्रीपाल योग्यायोग्य का विचार न कर हमारा स्वामी बन बैठने की चेष्टा मे है तब हम भी क्यो उस पाश के निवारण की चेष्टा न करे ? आइये सेठजी मै आप को अपनी रक्षा का सरलतम उपाय बताता हू उसके अनुसार व्यवहार करने पर दोनो रूप राशि रानिये तथा कुबेर की सम्पत्ति सब आपके हस्तगत होगी"।

ऐसा सुनकर सेठजी तो मानो नवजीवन पा गये। झट उछल कर बैठ गये। तब वे दोनो दुष्टता की प्रतिमूर्ति अनेक प्रकार की मुखाकृति बना बना कर चिरकाल तक परामर्श

करते रहे। पीछे जब वह शैतान उठ कर जाने लगा तब धवल उसके हाथ मे हाथ देकर कमरे के द्वार तक पहुँचाने गया और हँसते हँसत उसे बिदा किया।

(१५)

[विधि रहो बलवानिति मे मति] ?

प्रात कालीन शान्त समीरण हृदय को अत्यन्त प्रफुल्ल करने वाला होता है। तत्कालीन प्राकृतिक दृश्य और मनोरम छटा देखते ही बनती है। ऐसे ही समय श्रीपाल कुमार अपने यान के विशेष भाग मे बैठे हुए समीर सेवन कर रहे थे और जलयान उतुङ्ग तरङ्गो के साथ क्रीडा करते हुए वायु वेग से उडे जा रहे थे। इतने मे धवल भागता हुआ कुमार के पास आया और सहसा विस्मयोत्पादक स्वर कहने मे लगा—

"कुमार ! शीघ्र आइये एक अतीव आश्चर्यजनक व्यापार देखिये। ऐसा विचित्र जल जन्तु कभी देखने अथवा सुनने मे भी नही आया जिसके एक शरीर मे आठ मुख हो और आठो भिन्न भिन प्रकार के। महा आश्चर्य है। यदि आप देखना चाहे तो शीघ्र आइये"।

सुनते ही कुमार झपट कर उठे और शीघ्रता से धवल के साथ चल दिये। धवल ने अपने यान मे ले जाकर कुमार को एक मचान पर जो जल के ऊपर यान मे बाधा गया था चढने का इशारा किया। कुमार सरल भाव से उस मचान पर चढ कर जल मे झाकने लगे। तब उस दुष्ट ने सुअवसर देख उस मचान की रस्सियो को कैंची से काट दिया और कुमार सहसा जल मे जा गिरे।

" कुमार सरल भाव से मचान पर चढ़ कर जल मे झाँकने लगे—,
तब उस दुष्ट ने मचान की रस्सियों को काट दिया
और कुमार जल में जा गिरे "

पृ० सं० ६४

कुमार को जल मे गिरते देख धवल का वह दुष्ट मित्र मचान के समीप दौड आया और हर्षोत्कर्ष मे धवल के गले से चिपट गया। धवल भी अतीव प्रसन्न हो उसकी तथा उसके सफल षड्यन्त्र की भूरि भूरि प्रशसा करने लगा।

तब दोनो मित्रो ने कुछ परस्पर इशारा किया और ढाड मार मार कर रोने लगे। रो रो कर कहने लगे—"अरे हाय हाय अनर्थ हो गया। मचान-बंधन टूट जाने से कुमार जल मे जा गिरे। हाय ! हाय ! हमारा हितू, रक्षक इस प्रकार हमे अनाथ करके चल दिया। हाय ! कुमार तुम हमे किसके भरोसे पर इस तरह छोड़ कर चल दिये । अरे ! अब अनन्त दु ख और अपार शोक समुद्र मे हमे किस के सहारे पर छोड गये" । इसी प्रकार अनेक भाति से विलाप करने लगे। उनकी रोदनध्वनि से वहा बहुत से मनुष्य वाहनो के भिन्न भिन्न भागो मे से आकर एकत्र हो गये। उस दु खमयी घटना को सुन सुन कर सभी विलाप करने लगे।

उधर यह दु सवाद कुमार की दोनो रानियो ने भी सुना। सुनकर मानो उन पर भीषण वज्रपात हुआ। कटे हुए वृक्ष के समान दोनो रानियाॅ सुनते ही अचेत हो गईं। दासियो के वायु तथा जलोपचार करने पर चिरकाल मे उन्हे चेत हुआ। उन सुकुमारी बालाओ को स्वजनवियोग के ऐसे घोर कष्ट का कभी अनुभव नही हुआ था। सहसा अनाथ हो जाने से, वे किंकर्त्तव्य-विमूढ, हतचेतन सी हो गई। कभी घोर क्रन्दन करती, कभी उन्मत्त के समान प्रलाप करने लगती। उस विस्तीर्ण नील सागर तथा अनन्त नीलाकाश के मध्य उन्हे केवल शून्य ही भास पड़ने लगा। अनन्त आकाश के तले, विस्तीर्ण भूमण्डल के ऊपर उन्हे कोई अपना अवलम्ब, आधार न देख पड़ा। उनके करुण-क्रन्दन से पाषण हृदय भी पिघलने लगा। अपार व्यथा, घोर

कष्ट, दारुण वेदना पूर्ण विषम विरहाग्नि से उनका हृदय दग्ध होने लगा। उस अनन्त यन्त्रणा को केवल उनकी अश्रुधारा ही व्यक्त करती थी। उस भयङ्कर दृश्य का वर्णन करना हमारी मूक लेखनी के सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि किसी पाठक अथवा पाठिका को ऐसा अनुभव कभी हुआ हो तो वे स्वय उस घोर कष्ट का अनुमान करले। अस्तु।

दु:ख मे, आपद काल मे समवेदना, सहानुभूति ही सबसे बडा वशीकरण मत्र है। इसी मन्त्र के उपयोग द्वारा रानियो के हृदय को वश करने के लिये धवल अपने उस दुर्बुद्धि मित्र के साथ उस अवसर पर वहा आया। और अनेक सान्त्वनापूर्ण वचन कह कर छल कौशल से बोला—

"सुन्दरियो! श्रीपाल जैसा घोर कष्ट हम लोगो को दे गये वह वर्णनातीत है। पर यह दैव-दुर्विपाक है। मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है, विधि के विचित्र विधान मे हस्ताक्षेप करने की क्षमता मनुष्य नही रखता। अतएव इस विषय मे आपका दु:ख करना निरर्थक है। सबसे अधिक शोक यदि हो सकता है तो वह मुझे है, क्योकि मेरे ऊपर उन्होने अनेक उपकार किये थे और वे मेरे सब प्रकार से सहायकर्त्ता थे। जब मैंने ही धैर्य धारण कर लिया तब आपको ही अधिक शोकमग्न होने की क्या आवश्यकता है। आपके पास अपार धन है, रूप है, यौवन है। आप इसका अभी सब प्रकार सदुपयोग कर सकती हैं। यदि मेरे ऊपर आपकी कृपा-दृष्टि हो जाय तो मेरा जीवन भी सार्थक होजाय। मेरे सर्वस्व की भी आपही स्वामिनी हो। मै केवल दास बन आपकी सेवा करने का अधिकार मागूंगा। आशा है कि अब इस घोर दु:खमयी परिस्थिति मे आप मेरी सेवा को अस्वीकृत न करेगी और मेरे ऊपर कृपादृष्टि रक्खेगी"।

" योगिनियो से परिवेष्टित त्रिशूलहस्ता, सिंहवाहना, चक्रेश्वरी देवी वहाँ आई "

पृ० स० ६७

रानिया धवल की ऐसी दुर्वासना तथा प्रवञ्चनापूर्ण वाणी सुनकर एक दम चकित तथा भयभीत होगई। सारी घटना एक क्षण मे उनकी समझ मे आगई। कुमार श्रीपाल को धवल का सहसा आकर अद्भुत कौतुक दिखाने के लिये बुला कर लेजाना तत्पश्चात् सहसा क्रन्दन ध्वनि और धवल का उनके समीप आकर छल-प्रपञ्च भरे कुवासनापूर्ण उद्गार निकालना। रानियां भयभीत होकर एक दूसरे की ओर देखने लगीं और धवल अपूर्व मुद्रा मे उनके उत्तर की प्रतीक्षा मे खडा था इतने मे वहां एक अपूर्व घटना घटी। दशो दिशाओ मे भयानक अन्धकार छा गया, वायु प्रचण्ड वेग से बहने लगा, समुद्र का जल उछल उछल कर वाहनो को निगल जाने का उपक्रम करने लगा। प्रलय-काल का भीषण दृश्य चारो ओर छा गया। काली काली घनघोर घटा ने आकाश को छा दिया। सहस्रो इन्द्रवज्रो को मात करने वाली विद्युद्द्वारा घोर तीक्ष्ण दमक से चमकने लगी। आकाश मे पृथ्वी को टुकडे टुकडे कर डालने वाली घोर गर्जना उत्पन्न हुई। ऐसेही समय अत्यन्त भयानक रौद्र रूप धारण किये नग्न खड्ग हाथ मे लिये क्षेत्रपाल भैरो वहा आते दीख पड़े। उनके पश्चात् बडे विशाल मुग्दर हाथ मे लिये मणिभद्र, पूर्णभद्र, कपिल तथा पिगल और कुमुद अजन वाम तथा पुष्पदंत भयानक दंड हाथ मे लिये प्रतिहारी के रूप मे बावन वीरो सहित आये। उनके पीछे देवी देवियो तथा योगनियो से परिवेष्ठित सिंहवाहना त्रिशूलहस्ता चक्रेश्वरी देवी वहा आईं *। आते ही उन्होने

---

*सतीत्व के प्रभाव से ऐमी अलौकिक घटनाओं का होना कुछ असम्भव नहीं है। पुराणों में सतीत्व तेज की ऐमी अद्भुत चमत्कारपूर्ण अनेक घटनाए वर्णित है। जैसे १ सीताजी की अग्नि परीक्षा २ द्रौपदी की चीर वृद्धि ३ सत्यवान का पुनर्जीवन इत्यादि। वैज्ञानिकों से क्षमा चाहते हैं। लेखक।

धवल के दुर्बुद्धि मित्र को वध करने की आज्ञा दी। तदनुसार तुरन्त क्षेत्रपाल ने उसके पैर बांधकर कूपस्थम्भ पर उलटा लटका दिया और उसके मुख मे अशुधि पदार्थ भरकर उसके शरीर के खंड खड कर डाले। और चारो दिशाओ मे दिग्पालो को बलि-स्वरूप उसके शरीर खड फेक दिये गये। ऐसा भीषण व्यापार देख कर धवल थर थर कापने लगा। जीवन की सारी लालसा और साधो पर एक साथ ही पानी फिर गया। वह दुष्ट रक्षा का अन्य उपाय न देख उन सती शिरोमणि रानियो की शरण मे जा गिरा। यह देख चक्रेश्वरी महा भयङ्कर गर्जना करती हुई बोली' "अरे धूर्त पामर! अब उन सतियो की शरण मे छुपा है, अपने ऊपर अपार अनुग्रह उपकार करने वाले के साथ विश्वास-घात करते हुए तुझे लज्जा नहीं आई। तू सतियो का शरणागत हुआ इस कारण तुझे छोडती हू, परन्तु आज से फिर यदि कभी तूने कुवासना को हृदय मे स्थान दिया तो यही दशा तेरी की जायगी"। पीछे दोनो रानियो की ओर फिर कर देवी बोली "पुत्रियो! तुम अपने हृदय मे किसी प्रकार का शोक वा दु ख न करना। तुम्हारा पुण्यशाली पति सब प्रकार सकुशल है। आज से एक मास पश्चात तुम उनके दर्शन पाओगी। मै तुम्हे दो कुसुम-मालाये देती हू उन्हे धारण करो। प्रति दिन उन मे अधिकाधिक सुगन्ध का सरस सञ्चार होता जायगा और जो कोई दुष्ट तुम्हारी ओर कुदृष्टि मे देखने का दुस्साहस करेगा वह अन्धा हो जायगा'।

ऐसा कह देवी ने दो मालाये दिव्य पुष्पो की गु थी हुई रानियो को अर्पित की जिन्हे उन्होने बडे विनीत एव मुग्ध भाव से वक्षस्थल पर धारण किया। तत्पश्चात देवी अपने सब परिवार सहित क्षण भर मे लोप होगई।

धवल भी एकदम कापता, डरता, गिरता, पडता, भागता हुआ अपने वाहन के कमरे मे जाकर चुप चाप द्वार बंद करके लेट रहा।

(१६)

(नव-जीवन)

कुमार श्रीपाल ने समुद्र मे पडते ही नवपद मन्त्र का ध्यान किया और जल मे सहसा वे एक विशालकाय मत्स्य की पीठ पर आ रहे। नवपद मन्त्र एव जलतारिणी वटी के कारण जल उनको कोई क्षति नही पहुंचा सका। कुमार को लिये मत्स्य बडी तीव्र गति मे जल को चीरता हुआ जाने लगा। मानो वह इसी उद्देश से वाहन के नीचे प्रस्तुत था। इसी प्रकार मत्स्य की पीठ पर बिना किसी प्रकार का कष्टानुभव किये चलते चलते कुमार कोकण देश के किनारे पर पहुचे। वह कूल अनेक प्रकार के द्रुमलतादि से सुशोभित था। वहा कुमार एक चपक वृक्ष के नीचे गाढ छाया देख कर श्रमित होने के कारण सो रहे।

\+ \+ \+ \+

पाठको! आइए कुमार को निद्रितावस्था मे से जागने पर जो विलक्षण दृश्य देखने को मिलेगा उसका कुछ आभास हम आपको पहले ही से करादे जिससे कुमार की तरह आपको भी सहसा चकित न होना पड़े।

अलकापुरी के समान अनन्तगैश्वर्य तथा सुषमाधारिणी ठाणापुरी नामकी नगरी है, उसमे कोकणदेशाधिपति वसुपाल नाम का राजा है। एक दिन राजसभा मे गणितशास्त्र का कोई विशेषज्ञ आया और उसने अपने ज्योतिष ज्ञान का प्रकाश किया।

गणित विषय की अनेक चर्चा होने पर राजा ने उससे प्रश्न किया—

"पण्डितवर ! कहिये हमारी मदनमञ्जरी कन्या का कौन पाणिग्रहण करेगा ? वह हमे किस प्रकार प्राप्त होगा ? किस चिह्न से हम उसे जान सकेगे तथा किस दिन वह हमे मिलेगा ? गणित करके हमे ठीक ठीक इसका उत्तर दीजिए"।

इस प्रश्न पर गणितज्ञ ने कुछ समय तक विचार कर के इस प्रकार गणित का फल कहा—

"राजन वैशाख शुक्ला दशमी के दिवस, समुद्र के किनारे जो नन्दनवन के समान परम रमणीक वन है, वहा आपको राजकुमारी का वर सुप्तावस्था मे प्राप्त होगा। विशेषता इस बात से जानिएगा कि तृतीय पहर का अन्त समय होने पर भी चपक वृक्ष की छाया उन पर से नही हटेगी। वह अपार ऋद्धि-वृद्धि का स्वामी तथा अनेक मातङ्गो का धनी है"।

राजा महा आश्चर्यचकित हुए। ज्योतिषी की इस बात के सत्य की परीक्षा के हेतु-रहने के लिये आवास आदि का प्रबन्ध कर दिया गया।

एक दिन कोकण देशाधिपति के दो वीर सैनिक एक स्वर्ण-भूषण सज्जित अश्व को साथ मे लिये सागर के उपकूल की ओर शनै शनै जा रहे थे। चलते चलते नव नन्दनवन के समान जो प्रकृति का बनाया हुआ सागर कूल पर महा सुन्दर वन है उसमे उन्होने समुद्र तट के निकटस्थ चम्पक वृक्ष के नीचे एक महा सुन्दर दिव्य तेजधारी युवक को सोते हुए देखा। तब उन दोनो ने परस्पर मुस्करा कर कुछ आखो का इशारा किया और दोनो अश्व को लेकर उसके सामने खडे रहे।

पाठक यह बात समझ ही गये होंगे कि कोकणराज के भेजे हुए ही ये दो सैनिक थे जो ज्योतिषी के कथनानुसार कुमार के स्वागत को आये थे। और अब कुमार को यथोक्त रीति से पाकर परमप्रसन्न होकर उनके जागने की प्रतीक्षा मे उनके सामने खडे हुए थे।

+ + + +

जब कुमार को सोते सोते कुछ काल व्यतीत हो गया तब उन्होंने करवट बदली और आंखे खोलकर सामने देखा। देखते ही महाविस्मित होकर वे उठ कर बैठ गये। कुमार ने देखा कि दो सैनिक वेषधारी युवक खडे है और उनके पास एक अश्व है जो स्वर्णभूषण सज्जित है। कुमार के जागते ही वे दोनो हाथ बाधकर विनीत मुद्रा मे खडे हो गये। कुमार ने उठ कर उनसे पूछा—

"सज्जनो! आप लोगो का कौन स्थान है तथा यहा आने का क्या तात्पर्य है?"

उन मे से एक बोला—

"श्रीमान! यह कोकण देश है। यहा के अधिपति नृप शिरोमणि राजा वसुपाल ने आपके स्वागतार्थ हमे भेजा है। हम उनकी अङ्गरक्षक सेना के क्षुद्र सैनिक है"।

तब कुमार ने उनसे विस्तार पूर्वक सब वृत्तान्त सुनाने का अनुरोध किया। उसपर उनमे से एक ने उस ज्योतिषी आदि का सारा वृत्तान्त सविस्तार कह सुनाया। और श्रीपाल कुमार से अपने साथ अश्व पर चलने का अनुरोध किया। कुमार भी उस समय उचित समझ कर उनके साथ जाने के लिये तैयार होगये। और अश्व पर सवार होकर उनके साथ चल दिये।

मार्ग मे कोकणाधीश को बडे आडम्बर सहित आते देखा। आकर उन्होने शिष्टाचार पूर्वक श्रीपाल का स्वागत करके अपने समीप हाथी पर बैठाया और राजमदिर की ओर प्रस्थान किया। कहना न होगा कि नगर बडे धूमधाम से सजाया गया था। सत्य है 'ऋद्धि सिद्धि भाग्यवान के चरणो पर लेटती है। वह जहा जाता है लक्ष्मी उससे चार हाथ आगे चलती है'। अस्तु'

बडे समारोह से कुमार का नगर-प्रवेश हुआ। राजा ने अनेक प्रकार की स्वागत की तैयारियां कराई थी। बडे धूमधाम मे राजभवन मे पधारने पर राजा ने कुमार श्रीपाल से अपना मनोभिप्राय प्रकाशित किया और फिर रात्रि मे कुमार के साथ बडे आनन्दपूर्वक कुमारी मदनमञ्जरी का विवाह हुआ।

पिछली रात्रि जो अगम्य जलराशि मे, अनिश्चित दिशा मे बहे चले जा रहे थे—ऊपर अनन्त नीलाकाश और नीचे अथाह जल था—चारो ओर जिनके बडी भयङ्कर समुद्र तरगे लहर मार रही थी, वेही आज—दूसरी रात्रि मे ही विवाह के आनन्दोत्सव मे मग्न है। सत्य है भाग्यवान पुरुषो की विपत्ति भी क्षणिक और सुख की कारण होती है।

इस प्रकार कुमार श्रीपाल उस भयङ्कर विपत्ति से मुक्त हुए और सहर्ष कोकण देश मे नववधू के साथ आनन्द उल्लास मे मग्न होकर रहने लगे।

(१७)

कुचक्र

कोकणराज ने कुमार श्रीपाल को अनेक राज सम्मान-सूचक उपाधिया देनी चाही किन्तु श्रीपाल ने उन्हे अस्वीकार कर दिया। उन्होने अपने लिये केवल एक कर्तव्य चुना कि जो अतिथि

अथवा सम्माननीय व्यक्ति राजदरबार में आवे उसका वे इत्रपान आदि से आतिथ्य सत्कार करे।

विवाह से लगभग एक मास पश्चात् कुमार ने देखा धवल सेठ बहुत सी बहुमूल्य वस्तुए कोंकण-राज की नजर के लिये दरबार में लिये आ रहा है। कुमार उसे देखकर मन मे प्रसन्न भी हुए और विषण्ण भी हुए। प्रसन्न इसलिये कि अन्त मे विधाता ने प्रिय रानियो के मिलाप का फिर संयोग जुटा दिया, किन्तु विरह-वैकल्य मे उनकी क्या दशा हुई होगी अथवा क्या जाने इसी दुष्ट ने कुछ अनिष्ट किया हो ऐसी आशङ्का से उनका हृदय अतीव विकल हुआ। परन्तु वे किसी भी प्रकार का हर्ष विस्मय अथवा विषादसूचक भाव प्रगट किए बिना मौन बैठे रहे।

इधर धवल सेठ ने राजा को नजर आदि प्रदान कर अपने स्थान पर बैठते हुए श्रीपाल को देखा। देख कर वज्राहत के समान स्तब्ध एव किङ्कर्त्तव्य हो गया, परन्तु उसने अपने को शीघ्र ही सम्हाल लिया और फिर राजा की दृष्टि बचाकर श्रीपाल की ओर बड़े ध्यान से देखने लगा कि कदाचित मेरी दृष्टि को ही धोका होता हो, पर हाय हाय यह तो वही रूप राशि, वही रंग, वही छटा, वही हावभाव और वही शारीरिक गठन है। यह क्या कोई अन्य हो सकता है यह तो वही श्रीपाल है। तब सेठ विचारने लगा—तब क्या हमारा इतना श्रम, इतना भीषण षड्यन्त्र, इतना छल कौशल सब व्यर्थ गया, इसे तो हमने अनन्त जलराशि मे डुबा दिया था नहीं जी यह होही नही सकता—क्या एक आकार प्रकार के दो व्यक्ति नहीं हो सकते? यह अवश्य ही कोई और है पर है यह क्या? वह मुझे पान देने के लिये आ रहा है। शायद राजा ने कहा है। अरे! यह तो अवश्य ही कुमार श्रीपाल है। जरूर यह मन्त्र शक्ति जानता है तभी तो इतने

गहन जल से निकल आया है। क्या देवी का कथन तो सत्य नहीं हो रहा है ? हाय

इतने मे कुमार श्रीपाल पान इत्र आदि आतिथ्य की वस्तु लिए आ पहुँचे। बडे विनीत भाव से उन्होने सेठ के इत्र लगाया पीछे उन्हे मुस्कराते हुए पान दिया। सेठ ने भी कुछ झेपते कुछ नीची दृष्टि किये पान लिया परन्तु सहस्रो बिच्छू मानो इस समय उसके हृदय को डस रहे थे। परन्तु धन्य है श्रीपाल कुमार का औदार्य भाव जिन्होने किसी प्रकार का हर्ष वा विषाद, राग वा द्वेष प्रगट किये विना समभाव से मुस्कराते हुए उसका आतिथ्य सत्कार किया।

कुछ काल पश्चात् राजा से इधर उधर की बाते कर के-सेठ अपने वाहनो को वापस चला गया।

\+ \+ \+ \+

कथा का क्रम ठीक करने के लिये अब हम कुछ हाल पीछे का कहदे जिससे कथानक मे भ्रम न हो।

चक्रेश्वरी देवी के अपनी माया सहित अदृश्य हो जाने के पश्चात धवल ने मन मे विचारा कि अब श्रीपाल की ये दोनो रानिया तथा सारी सम्पत्ति अवश्य ही मेरी हो गई, क्योकि जब ऐसा भयानक दैवी प्रकोप भी शान्त हो गया और मै काल के गाल से बच गया तो अब मुझे मारने वाला कौन है—अवश्य ही मेरा भाग्य प्रबल है और अब मेरी मनोकामना चिर सञ्चित आशा-अवश्य ही सफल होगी। ऐसा विचार कर उसने एक कुटनी द्वारा अपनी हृदयगत कामना रानियो से बडी नाटकीय भाषा मे कहलाई परन्तु उन्होने उस कुटनी को बारम्बार धिक्कार

देकर अपनी दासियो से धक्का देकर निकलवा दिया। इतने पर भी जब उस दुष्ट को सन्तोष न हुआ तब उसने स्वय रानियो के पास जाने का विचार किया।

प्राय पापी मनुष्यो का हृदय निर्बल होता है और वे कायर हुआ करते हैं। जहा उन्हे अपनी शक्ति से बढी हुई शक्ति के विषय मे अपने लिये विरोधाभास हुआ कि बस उनकी नानी मारी जाती है और कोई भी कार्य करते हुए घोर असमञ्जस मे पड जाते है। इसी कारण पापी धवल भी दोनो दैवी शक्तिविशिष्टा रानियों के समीप जाते भयभीत होता था यद्यपि अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क करके उसने अपने हृदय को सन्तोष दे रक्खा था परन्तु जब चक्रेश्वरी की उस समय की नग्न कृपाण हाथ मे लिए सिंह वाहना भैरवी मूर्ति याद आजाती तभी सारी तर्क वितर्कों पर पानी फिर जाता, धैर्य, सन्तोष, साहस सभी पलायन कर जाते। परन्तु ज्यो २ भयानक घटना को अधिक समय होने लगता है त्यो त्यो उसका प्रभाव भी कम होने लगता है। इसी प्रकार जब उक्त घटना को कुछ दिन बीत गये और कुटनी आदियो से काम निकलने की आशा न रही तब धवल स्वय वस्त्रा-भूषण धारण कर के हृदय मे साहस रख के रानियो के समीप चला। वाहनो मे पहुँचकर उस दुष्ट ने रानियो को सम्बोधन कर अनेक प्रेम-वाक्य कहने आरम्भ किये। परन्तु दैवी शक्ति का चमत्कार देखिये रानियो की ओर देखते ही बोलता बोलता वह अन्धा हो गया और इधर उधर टक्कर मारने लगा। कहा तो वह प्रेमभाषा मे अपने हृदयोद्गार निकाल रहा था कहां—"हा! हा!! माताओ! देखिये! मेरी रक्षा करो रक्षा करो! अब मै कभी भूल कर भी इस ओर आने का साहस न करूगा"। आदि कह कर पृथ्वी पर गिर कर रक्षा की भीख मागने लगा। रानियो को

इस दु:खावसर मे भी उसकी ऐसी दशा देखकर हसी आगई और उन्होने अपनी दासियो द्वारा उसे बाहर निकलवा दिया। बाहर जाकर ज्यो ही उसे दीखना आरम्भ हुआ कि वह सिर पर पैर रखकर वहा से भागा और पछताता हुआ अपमानित दशा मे ही अपने कमरे मे चला गया।

जब धवल ने देखा कि इस तरह मेरे किये ये रानिया कभी मुझे हस्तगत न होगी तब उसने स्वदेश चलने का विचार किया सोचा कि कदाचित् श्रीपाल की याद भूलने पर ये अन्त मे स्वय मुझे स्वीकार करले इसलिये अब स्वदेश चलना चाहिये।

ऐसा विचार कर उसने वाहनो को स्वदेश की ओर चलाने का आदेश दिया परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी वाहन वायु के अनुकूल न होने के कारण उधर को न जाकर कोकण देश की ओर अग्रसर होते गये और कुछ समय पश्चात् कोकण देश के उपकूल पर जा पहुँचे।

इसके आगे का हाल विज्ञ पाठक इस परिच्छेद के पूर्वाश मे पढ ही चुके है कि किस प्रकार धवल ने राजा के पास नजर ले जाकर श्रीपाल को देखा। हम उसकी पुनरावृत्ति नही करना चाहते।

× × × ×

वाहनो मे पहुँचकर धवल घोर चिन्ता मे पडा। न वहा से जाते ही बनता न ठहरते ही। वायु की प्रतिकूलता तथा श्रीपाल द्वारा रोके जाने के भय से जाना उसके लिये सर्वथा असम्भव था, परन्तु वहां एक एक क्षण उसे अपने प्राणभय की शंका थी. श्रीपाल ने जहा मेरा अपराध बताया कि बस शूली तैयार है। फिर वह सोचने लगा अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि

राजा की श्रीपाल पर से श्रद्धा कम हो जाय। ज्ञात होता है कि श्रीपाल ने राजा को अभी अपना परिचय नही दिया अन्यथा वह मुझे तुरन्त बन्दी बना लेता। अस्तु,

इसी प्रकार दुश्चिन्ता करता हुआ वह वाहनो से बाहर आया तो उसने देखा कि मातङ्गो का एक समूह उससे याचना करने को प्रतीक्षा मे खडा है। उसको देखते ही डोम लोग अनेक प्रकार के नृत्य गान आदि करने लगे, उनके साथ की स्त्रियां अनेक प्रकार के हावभाव दिखाने लगी। कुछ समय तक इसी प्रकार नाचने गाने के पश्चात् उन्होने सेठ से कुछ देने की याचना की। तब सेठ ने उन्हे अनेक प्रकार का द्रव्य आदि देकर सन्तुष्ट किया।

अचानक धवल को एक युक्ति सूझ पडी, उसने सोचा कि क्यो न इन लोगो से श्रीपाल को लाञ्छित कराद् ? ऐसा विचार करके उसने उन लोगो के मुखिया को अपने पास बुलाकर कहा—"यदि तुम मेरा एक कार्य-साधन करो तो मुह मागा पुरस्कार पाओ।"

डोम ने कहा "स्वामी श्रीमुख से जो आज्ञा दे यदि वह हमारे सामर्थ्य की हो तो हम प्राणपण मे उसे पूर्ण करने को तैयार है"।

यह सुनकर ईर्ष्यावृत्ति धवल बडा प्रसन्न हुआ। और वह उन सब डोम और डोमनियो को एक एकान्त स्थल पर लेजाकर बहुत काल तक न जाने क्या क्या पट्टी पढाता रहा। बहुत गुप्त रूप से यह नवीन कुचक्र रचा गया था परन्तु फिर भी इतना हमने जान ही लिया कि उस कार्य के उपलक्ष्य मे धवल ने उन्हे एक लाख सोने की मुहर देने की प्रतिज्ञा की।

(१८)

कुचक्र का फल

अगले दिन दरबार मे जब राजा और कुमार आदि आकर बैठ गये तो द्वारपाल ने कुछ गायक और नर्तक डोम लोगो के आने की सूचना दी। राजा की आज्ञा पाकर वे लोग अन्दर आये और उन्होने अपनी विद्या का प्रकाश किया। राजा उनके नृत्य गान ताल लय पर मुग्ध होकर कहने लगे—"हम तुम्हारी सङ्गीत कलासे बडे प्रसन्न हुए तुम इच्छित वस्तु मांगो"।

डोमो का अध्यक्ष बोला—"पृथ्वीनाथ हम तो केवल ऐसे दरबारो से गुणग्राहकता और सम्मान चाहते है। धन देने वाले तो प्रभू की प्रजा मे भी बहुत है"।

तब राजा ने श्रीपाल को उनके सत्कार करने का सकेत किया। श्रीपाल इत्रपान आदि सत्कार की वस्तु लेकर उनके पास पहुँचे। परन्तु यह क्या? यह कैसा आश्चर्य-व्यापार? वे सब लोग श्रीपाल को देखते ही रोने लगे और उसके गले से चिपट गये। प्रथम वही वृद्ध मुखिया श्रीपाल को बेटा बेटा कहकर गले लगाने लगा। और रोकर बोला—

"हाय पुत्र! तू ऐसा निर्मोह हुआ कि ज़रा सी बात पर घर से क्रुद्ध होकर भाग गया और फिर तूने हमारी सुधि भी न ली"।

एक वृद्धा डोमनी ने रोकर श्रीपाल के सिर को अपनी छाती से लगाते हुए कहा—"हाय! प्यारे बेटा! मेरी आखो के तारे मैं तेरे विना रोते रोते अधी होगई। हाय! तू मुझे क्यो छोड़ आया"।

एक लडका उठा, एक दम श्रीपाल के गले मे बाह डालकर रोते हुए कहने लगा—"भैया ऐसे तो तुम कभी मुझसे गुस्से न

हुए थे पर अबकी बार हम से एक दम रूठ गये, याद भी न किया"।

एक लड़की कहने लगी—"भैया जी तुम तो मुझे बड़ा प्यार करते थे फिर इतने दिन तक हम से जुदा क्यो रहे ?"।

तब एक स्त्री जो घूघट खीचे हुए थी श्रीपाल के चरणो को पकड कर रोते हुए कहने लगी "हाय नाथ ! मैं क्या जानती थी आप मेरी छोटी सी बात पर इस प्रकार क्रोध करेंगे। ऐसा जानती तो मै कभी कुछ न कहती। हाय ! आपके विना सारा ससार सूना सा दीखता था। प्राणेश्वर अब मेरा अपराध क्षमा करके घर चलिये"। इसी प्रकार कोई श्रीपाल को मामा कहता, कोई भानजा कहता, कोई काकी बनती, कोई बुआ। किसी किसी ने यहा तक कहा कि इस द्वीप से जहाज पर चढकर जाने तक का तो तुम्हारा पता लगा परन्तु फेर पता न चला। इसी अवसर पर उस वृद्ध मुखिया डोम ने राजा से धूर्तता की पराकाष्ठा दिखाते हुए हाथ जोड कर कहा—

"महाराज ! चिरकाल से हमारा पुत्र रूठकर चला आया था, देश देश ढूंढने पर भी कही पता न चला परन्तु अन्त मे पृथ्वीनाथ के अनुग्रह से हमे इसका दर्शन होगया। अब भी यदि यह उठकर हमे पान देने न आता तो शायद हम इसे पहिचानते भी नही"।

ऐसा घोर प्रपञ्च देख कर श्रीपाल स्तब्ध होकर खडे रहे। क्षणमात्र मे उन्होने उनके इस दुष्प्रपञ्च का कारण समझ लिया और सोचने लगे कि यह इनकी दुष्टता नही है लालच मे पड कर इन्होने ऐसा कर्म किया है। यह सब मेरे भाग्य का दोष है। सेठ जी मुझ से वृथा ईर्ष्या रखते है, पर उन्हे क्यो दोष दूं ? पूर्व

सञ्चित कर्म का फल-भोग तो मेरे लिए अनिवार्य है। धन्य है कुमार आप की विचारोत्कृष्टता !

ऐसा विचार करते हुए श्रीपाल गम्भीर मुद्रा में खड़े रहे। राजा यह सब अद्भुत—आशातीत व्यापार देख कर जड के तुल्य स्तम्भित एवं चकित होगया। ओह जो बात कल्पना की भी सीमा से दूर थी, जिस बात की आशा कभी स्वप्न मे भी नही की जा सकती थी वैसी यह बात देख और सुन कर राजा घोर चिन्ता और विषाद मे पड गये। सोचने लगे—ओह क्या यह बात सत्य है ? इसका ऐसा ही नीच वंश है। हाय ! तब तो मेरा सर्वनाश हुआ। परन्तु यह तो बोलता भी नहीं अवश्य ही मेरा राज्यकुल, गौरव, मान सब भस्मीभूत हो गया। हाय मैं इस प्राणान्तकारी घटना से पहले ही क्यो न मर गया। मा ! वसुन्धरे तू यदि मुझे अपने वक्षस्थल मे स्थान दे तो मैं अभी समा जाऊ परन्तु नहीं मेरे लिये अब तेरे पास भी स्थान नहीं है, ससार मे कही मुख दिखाने लायक मै न रहा। मेरी एकमात्र कन्या का ऐसा नीच-वंश-जात पति, अरे ! अज्ञात कुल-शील पुरुष को कन्यादान करके मैंने भयङ्कर पाप किया उसी का यह प्रायश्चित्त है। ऐसा विचारते विचारते राजा महा क्रोधान्वित हो उठा। तुरन्त उसने उस ज्योतिषी को उपस्थित करने की आज्ञा दी।

ज्योतिषी के आने पर राजा ने कहा—

"तुमने क्यो हमे इसका कुलगोत्र आदि पहले सूचित नही किया ? वंश छिपा कर तुमने हमारे साथ घोर अन्याय किया। जानते हो राजवंश को कलङ्कित करने के अपराध का क्या दण्ड है ?"।

ज्योतिषी ने डरते हुए कहा—"महाराज मेरे ज्योतिष-ज्ञान से यही जान पड़ता था कि वह अनेक मातङ्गों का धनी है। मातङ्ग हस्ती को भी कहते हैं डोमों को भी कहते हैं। यही मैंने सेवा मे निवेदन किया था। अधिकतर अनुमान हस्ती का होने से स्पष्टीकरण नही हुआ। अ एव मैं क्षम्य हूँ"।

परन्तु राजा ने क्रोधान्ध होकर दोनो को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी।

राज कन्या मदनमञ्जरी ने यह सब भीषण घटना सुनी। घोर यन्त्रणा से उसका हृदय दग्ध होने लगा। वह कदापि विश्वास न कर सकी कि उसका, ऐसा पुरुषो मे रत्न तुल्य पति, नीच वश-सम्भूत हो सकता है। प्राण प्यारे पति को इस प्रकार लाञ्छित होते देख वह अत्यन्त खिन्न हुई। जब उसने पिता को अपने पति के लिए ऐसा कठोर दण्ड विधान करते सुना तो शीघ्रता से पिता के पास जा कर रो रो कर कहने लगी—

"पिता जी! विना विचार किये ऐसा भीषण दण्ड न दीजिये कम से कम उससे पूछ तो लेना चाहिये जिसके लिए आप यह प्राण-दण्ड देते है।" ऐसा कह कर वह सिसक सिसक कर रोने लगी। राजा ने श्रीपाल को क्रोध से देखते हुए कहा—

"कहो! क्या तुम अपना वश-परिचय देकर अपने को इस दोष से मुक्त कर सकोगे?"

तब कुमार बोले—

"राजन! हमारा वंश-परिचय हमारी यह तलवार देगी। हम अपने मुख से अपना वंश-गुण नहीं कह सकते। यह अधमो की चाल है। आप अपनी सारी सेना तैयार कराइये। एक ओर

वह और एक ओर हम होंगे, तब हम आपको अपना वश-परिचय देंगे। धन्य है आपकी समझ! थोडे से कुचक्रियो के जाल ने आपको फाँस लिया और आपने उन्हीं की बात पर क्रोधावेश मे विवेक-शून्य होकर हमारे प्राण-बध की आज्ञा देदी। अब आप हमारा वश सुनना चाहते है? उसका उपाय हम आपको बता चुके है"।

राजा कुमार के तेज पूर्ण मुख मण्डल को देख कर तथा उनकी ओजस्वी वाणी सुन कर सन्नाटे मे आगये। वे डोम लोग भी मानो सहम से गये। कुमारी मदनमञ्जरी भी कुमार की वीर वाणी सुन कर प्रफुल्लित हो उठी। हर्ष फुल्ल लोचनो मे वह कुमार के मुख को देखने लगी। अहा! क्या अपूर्व दृश्य था एक ओर मानो एक भयपूर्ण ग्लानि की सहमी हुई तथा करुणा की मूर्ति है दूसरी ओर एक वीरता की मूर्ति एक दु स्साहसी और भय-विकल समूह के सामने खडी है। पाठको! हृदय मे उस चित्र को अङ्कित करके देखिये कैसा करुणा, वीभत्स, वीर और भयानक रस का अद्भुत समावेश है। अस्तु—

जब राजा श्रीपाल को स्तम्भित और चकित की भाँति देखते ही रहे और क्या उत्तर दे इसका कुछ निश्चय न कर सके तब श्रीपाल कुमार पुन बोले—

"राजन्! यदि हमारे कथन के अनुसार हमारे वंश जानने की इच्छा न हो तो हम आपको दूसरा उपाय बताते हैं। आज-कल आपके नगर के सागर कूल पर जो जलयान आये हुए है उनमे हमारी दो पाणिगृहीता स्त्रिया हैं उन्हे बुला कर उनसे आप हमारा वंश-परिचय प्राप्त कर सकते हैं"।

राजा यह सुन कर विस्मित होकर बोले—

"क्या उन वाहनो मे तुम्हारी स्त्रियाँ हैं यह कैसा रहस्य है ? कुमार मुझे क्षमा करो । अज्ञान दशा मे क्रोधावेश मे विना विचार किये मैंने तुम्हारा अपमान किया है । मुझे क्षमा करो और साफ साफ बात कहो कि यह क्या भेद है ? पहेली न बुझाओ" ।

कुमार बोले—"राजन् जो मैने आपसे कहा है उससे अधिक मै और कुछ नही कह सकता आप उस बात की सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण ले सकते है" ।

तब राजा ने अपने मन्त्री को स्वय पालकी ले जाकर बडे आदर-मान से कुमार की रानियो को वाहनो पर से लिवा लाने की आज्ञा दी और उन डोमो को बन्दी करने का आदेश दिया ।

\+ + + +

उधर देवी के बताये हुए एक मास की अवधि आज समाप्त हो रही थी । कुमार की दोनो रानियॉ कुमार के वियोग मे खिन्न-चित्त और मलीन मुख बैठी थीं । इतने मे ही राज-मन्त्री ने रानियो के पास राजा का सदेश भेजा । देवी की निश्चित अवधि समाप्त होते देख रानियो को निश्चय हो गया कि वहॉ चलने पर अवश्य अपने प्राणपति के दर्शन होगे । ऐसी आशा हृदय मे रख कर सहर्ष सुखासन पर बैठ कर राज-मन्त्री के साथ चली । उधर जब सेठ ने इस प्रकार रानियो का जाना सुना तो मानो हृदय पर बज्रप्रहार हुआ समझ लिया कि बस सब गुड गोबर हो गया । अवश्य श्रीपाल का भेद खुल गया और यह वार भी खाली गया परन्तु अब वह विवश था । लाचार मन मारे भविष्य घटना का भयंकर चित्र हृदय पर खीचता हुआ चुपचाप पडा रहा ।

राजा ने अपने अन्त पुर के एक भवन मे रानियो को ठहराया वहाँ श्रीपाल को देखते ही दोनो रानियाँ उनके चरणो पर लोट

गईं और फूट फूट कर रोने लगी। कुमार ने उन्हे आश्वासन दिया। इतने मे राजा वसुपाल उन डोम और कुमारी मदनमञ्जरी, ज्योतिषी, रानी और मन्त्री आदि सहित स्वय आ उपस्थित हुए। रानियो को देख कर कहने लगे—

"पुत्रियो! तुम इस मदनमञ्जरी के समान ही मेरी प्यारी पुत्रिया हो। कुमार के जीवन-वृत्तान्त के विषय मे हमारे हृदय मे बड़ी उथल-पुथल मचगई है। हम इनके विषय मे सारी बाते जानने को बड़े उत्सुक है। तुम हमारी पुत्री हो निस्सकोच भाव से हमे इनका परिचय दो।

यह बात सुनकर विद्याधर की पुत्री मदनमञ्जूषा ने कुमार का जीवनचरित्र जघाचारण मुनि के कथनानुसार जहाँ तक धवल सेठ ने कुमार को जल मे गिरा दिया था वह सब कह सुनाया। अन्त मे कुमार के जल मे गिराने के पश्चात् धवल का अत्याचार, दैवी प्रकोप का भीषण चमत्कार और कोकण देश के किनारे आने तक का सब हाल सुना दिया।

राजा सारा वृत्तान्त सुनकर महा प्रसन्न हुआ और धवल का अत्याचार सुन कर उसे बडा क्रोध हुआ। तब राजा ने प्रकाश रूप मे कहा—

"यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात हुई कि इस भयकर दुर्घटना का ऐसा आनन्दपूर्ण अन्त हुआ। कुमार श्रीपाल हमारी बहिन का पुत्र हमारा भानजा है। हमारा आत्मीय ही हमारी पुत्री का पति हुआ इससे अधिक हर्ष और सौभाग्य की और क्या बात हो सकती है? धन्य है कुमार तुम्हारी शालीनता और आत्मगौरव। ऐसे प्राणान्तकारी अवसर पर भी तुम धैर्य से च्युत नही हुए। अहो कैसा आनन्दमय अवसर है"।

अब ज्योतिषी जी की भी बन पड़ी। कहने लगे—

"राजन् हम जो कहते थे कि हमारी ज्योतिष कभी मिथ्या बात नही बताती देखिये कुमार अनेक मातङ्गो के स्वामी हैं। अर्थात् बडे ऐश्वर्य और सम्पत्तिशाली एव बहु कुटुम्ब परिवेष्ठित है"।

राजा ने ज्योतिषी जी का अनेक प्रकार के रत्नाभरण आदि देकर सत्कार किया। पश्चात् क्रोधपूर्वक उन डोम लोगो से जो यह सब व्यापार देखकर भय से थर थर काँप रहे थे और मृतप्राय होरहे थे पूछा—"अरे नीच पामरो! तुम्हारा यह कैसा कपट व्यापार था। सब सत्य सत्य कहो अन्यथा तुम्हारी बोटी बोटी काट कर कुत्तो को खिलादी जायगी"।

वे रोरोकर कहने लगे—

'दुहाई! महाराज की हमारा कोई अपराध नहीं हम तो मगते लोग है लोभ मे पड कर ही हम से यह दुष्कर्म हुआ। हमसे यह कुकर्म धवल सेठ ने कराया है। एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा देने का लालच देकर हमको यह घोर दुस्साहस करने पर विवश किया। दुहाई महाराज की हमे बचाइये। हाय हाय धवल ने हमारा भी नाश किया'।

राजा डोम लोगो की यह बात सुनकर महा क्रोधान्वित हुआ और उसने तुरन्त धवल को पकड मुश्के बाँध कर लाने का सेनापति को आदेश दिया। कुछ ही काल मे धवल मुश्क बँधे हुए लाकर राजा के सामने उपस्थित कर दिया गया।

धवल की लज्जा और भय के मारे बुरी दशा थी। राजा ने उसको अनेक प्रकार से धिक्कारा और क्रोधावेश मे जो मुंह मे आया कह गये। अन्त मे उन्होने कहा—"१ नरहत्या के अपराध मे

२-अपने उपकारी से विश्वासघात करने के अपराध मे, ३-सती शिरोमणि स्त्री रत्नो के सतीत्व भग करने के अपराध मे, ४-कपट द्वारा दूसरे की सम्पत्ति के हरने की अनाधिकार चेष्टा करने के अपराध मे, ५-राजकुल के साथ घात करने के अपराध मे, ६-राजकुल को कलकित कराने के प्रयत्न के अपराध मे, हम धवल को तथा राजकुल को लाञ्छित करने के अपराध मे और कपट षड्यन्त्र करके द्रव्योपार्जन के अपराध मे इन सब डोमो को प्राण-बध की आज्ञा देते हैं"।

राजा के मुख से इस प्रकार क्रोधपूर्ण तिरस्कारयुक्त प्राण-बध की आज्ञा सुनकर धवल तो मानो अर्द्ध मृतक सम पृथ्वी पर पड रहा। डोम लोग रोरोकर हाहाकार मचाने लगे। श्रीपाल के उदार हृदय मे इस दृश्य को देखकर अत्यन्त करुणा का उद्वेग हुए। वे हाथ जोड राजा से कहने लगे—

"आप मेरे बडे है, पूजनीय हैं अतएव मै आपकी न्यायोचित दण्डाज्ञा मे हस्तक्षेप करने की धृष्टता तो नही कर सकता, परन्तु मेरी एक प्रार्थना है उसे महाराज अवश्य ध्यान से सुने। धवल सेठ जी ने मेरे साथ चाहे जितनी बुराइयाँ की परन्तु अन्त मे यह बात अवश्य विचारणीय है कि इनके साथ लाने पर ही आज मै इस सुख समृद्धि का अधिकारी हुआ। यद्यपि तर्कवाद द्वारा यह विचार उपेक्षित हो सकता है परन्तु मै अपने ऊपर तिलमात्र उपकार करने वाले की भी यथाशक्ति रक्षा करने की चेष्टा करूगा। अतएव आप मेरे अनुरोध मे मुझ पर अनुग्रह करके इन्हे इस बार क्षमा कर दीजिए"।

राजा ने इस प्रकार श्रीपालकुमार की युक्तियुक्त बात सुनकर और कुमार का विशेष आग्रह देख कर धवल सेठ को मुक्त कर देने की आज्ञा दी। तब कुमार ने कहा—'महाराज जिसके कारण

इन डोम लोगों ने ये उत्पात मचाया जब उसी को आपने उदार चित्त से क्षमा-दान दिया तब इन अज्ञानी लोगों को भी छोड़ दीजिए। जिससे अपने कृत्य पर ये जीवन मे पश्चात्ताप करते रहे"। अस्तु, श्रीपाल के कथनानुसार राजा ने उन्हे भी छोड देने की और ततक्षण देशान्तर चले जाने की आज्ञा दी। वे श्रीपाल कुमार और राजा वसुपाल को बार बार धन्यवाद और अशीष देते हुए वहाँ से चले गये।

इस प्रकार उस भीषण कुचक्र का जो दुष्ट धवल ने श्रीपाल के नाश के लिये रचा था महा सुखद परिणाम निकला और सब बिछुडे हुए प्रेमी जन, एकत्र होकर सुखपूर्वक कालक्षेप करने लगे।

(१६)

दुष्टता की पराकाष्टा

वीर पुरुष उदार होते है जितने वे कठोर होकर शत्रु से बदला लेने के लिये भीषण से भीषण मार्ग पर जाते नहीं हिचकते उतने ही कभी कभी करुणार्द्र होकर उदारता की भी पराकाष्ठा कर देते हैं।

श्रीपाल कुमार जैसे वीर व्यक्ति से ही यह सम्भव हो सकता था कि अपने प्राणघातक विश्वासघाती शत्रु को भी बार बार क्षमा कर सकने वा अपने ऊपर खुले दरबार मे लाञ्छन लगाने वाले उन डोम लोगों के दल को उदारभाव से अभयदान दिला सकते। इतना ही नहीं उन्होंने वीरजन सुलभ सरलता से धवल सेठ का सब अपराध क्षमा कर दिया और उसे पहले की तरह पूज्य भाव से अपने पास रखने लगे। वे उसे अपना पितृव्य समझते, पूज्य की

कमन्द पर चढ़ते चढ़ते जब वह शयनगृह के समीप पहुँचा तभी उसका कमन्द पर से पैर फिसल गया, सात खण्ड की ऊँचाई से एकदम नीचे आ गिरा और वह छुरा उसके वक्षस्थल मे उसके पाप का प्रायश्चित कराने के लिए पूरी लम्बाई से घुस गया। उसके मुख से एक हलकी सी चीख निकली और उस नर-पिशाच दुष्टराज धवल ने छट पटाकर वही प्राण दे दिये। इस प्रकार उस नर-पिशाच का अन्त होगया।

प्रात काल प्रहरियो से सूचना पाकर श्रीपाल कुमार भी शीघ्र घटनास्थल पर पहुँचे वहाँ अपने शयनगृह के ऊपर कमन्द लगी देखी और उसके पास धवल की मृत देह, जिसके हाथ मे छुरा था और वह देह मे घुसा हुआ था। यह सब देखकर कुमार ने एक लम्बी श्वास ली और सम्मानपूर्वक उसका अन्त्येष्टि सस्कार करने की आज्ञा देकर अपने भवन मे चले गये। जो पाठक श्रीपाल के उदार हृदय से परिचित है वे जान सकते हैं कि श्रीपाल ने धवल की मृत देह को देख कर किस भाव से उष्ण निश्वास ली ? उदारचरित वीरात्माये अपने शत्रु का भी दु ख-मय अन्त देखकर शोकान्वित हो जाती है फिर धवल को तो कुमार लाख अपकार करने पर भी अपना पितृव्य और उपकार-कर्त्ता मानते थे। उसके ऐसे दु खान्त का उन्हे शोक क्यो न होता ? वे यह सोचकर महा दु खित हुए कि मै लाख प्रयत्न करके भी इनका सुधार न कर सका और इन्हे अध पतन के घोर अन्धकार से न निकाल सका।

पाठक इस प्रकार इस अभिनय के कपटी क्रूर पात्र धवल की लीला समाप्त हुई।

+ + + +

" कुमार शीघ्र घटनास्थल पर पहुँचे .धवल की मृतदेह, जिसके हाथ में छुरा था और वह देह में घुसा हुआ था "

पृ० सं० ८६

तब श्रीपाल कुमार ने उदारता पूर्वक वे सब जलयान तथा उनकी व्यापारिक सामग्री उन तीनो व्यापारियो को दे डाली जिन्होने धवल को अनुचित कर्मों से अलग रहने की मन्त्रणा दी थी। और उन्हे स्वेच्छानुसार चले जाने की आज्ञा दी।

(२०)

कुंडलपुर की वीणा-वादिनी

इस प्रकार सब तरह से निश्चिन्त होकर कुमार श्रीपाल तीनों रानियो के साथ आनन्द विलास मे मग्न होकर रहने लगे।

एक दिवस वे घूमने के लिये बाहर गये। वहाँ एक बडा सार्थवाह * ठहरा हुआ दृष्टि पडा। जब कुमार सार्थवाह के समीप होकर जाने लगे तब उस सार्थवाह का स्वामी दौडा आया और उसने अनेक प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ कुमार की भेंट की। कुमार भी वहाँ कुछ समय के लिए ठहर गये और उन्होंने अतिशय आदर मान पूर्वक उस सार्थवाह से वार्तालाप किया और बडे प्रेम भाव से उससे पूछा—

"सेठजी! आप कहाँ से आ रहे है तथा अब आप का किधर जाने का विचार है। क्या मार्ग मे आपने कोई हमारे सुनने योग्य अद्भुत बात देखी है?"

सेठ ने हाथ जोडकर कहा—

"भगवन मै कान्ति नगर से आ रहा हूँ तथा अब यहाँ से कबुद्वीप जाने का विचार है। मार्ग मे अवश्य ही एक ऐसी घटना देखी है जो श्रीमान को सुनाने योग्य है।

* सार्थवाह—यह यात्रियों का एक काफ़ला होता है जिनका एक स्वामी होता है।—ले०।

अत वह सेवा मे निवेदन करता हू—यहां से लगभग ४०० चारसौ कोस की दूरी पर कु डलपुर नाम का एक परम रमणीय तथा दर्शनीय नगर है। उसका राजा मकरकेतु नामक है। उसकी एक कपूरतिलका नामकी रानी है। उसके एक पुत्र और एक पुत्री है। पुत्री का नाम गुणसुन्दरी है। वह वास्तव मे 'यथा नाम तथा गुण' की उक्ति को चरितार्थ करती है। वह सुन्दरी तो है ही परन्तु गुणो से उसका प्राकृतिक सौन्दर्य और भी बढ गया है। बाल्यावस्था से ही उसे वीणा-बजाने का शौक़ है और उसका अभ्यास अब इतना बढ गया है कि बडे बडे कलावन्त उसके वीणा-वादन के सामने सिर झुका देते है। वीणा मे वह ऐसी अपूर्व झङ्कार पैदा करती है कि सुनने वाले मूर्च्छित हो जाते है। उसकी ध्वनि, मूर्छना, झङ्कार, स्वरलहरी, स्वरालङ्कार आदि मनुष्य के चित्त को मुग्ध कर देते है। उसकी वीणा-ध्वनि जड मे भी जीवन शक्ति सञ्चार करने की सामर्थ्य रखती है। मै भी अनेक देश विदेश घूमा हूँ परन्तु ऐसी वीणा-वादिनी मैने कही आज तक नही देखी। यह अत्युक्ति नही है। जिस समय वह हाथ मे वीणा लेकर स्वर-सञ्चालन करती है तो मानो साक्षात् सरस्वती देवी ही स्वर-माधुर्य्य की अमृतमयी वर्षा करती हो ऐसी जान पडती है। उसके सङ्गीत से उसके सौन्दर्य्य मे एक अपूर्व आभा का विकास हो जाता है उस समय वह त्रिभुवनमोहिनी का रूप धारण कर लेती है। अनेकानेक सङ्गीताचार्य्य उसकी सङ्गीत-सभा मे आये परन्तु सबने मुँह की खाई। उसने यह प्रतिज्ञा की है कि जो कोई मुझे वीणा-वादन मे जीत सकेगा वही मेरा पति होगा। उसकी इस प्रतिज्ञा ने उस देश मे एक विचित्र स्फूर्ति उत्पन्न करदी है। अनेक दूर देशो के राजे, राजकुमार वहाँ आ आ कर वीणा सीख सीख कर अपनी भाग्य परीक्षा करते हैं। उसने जाति-पाँति का

कोई बन्धन नही रक्खा है। इस कारण जिसे देखिये उसी के हाथ मे वीणा है। कृषक गण अपना कृषि कर्म भुला कर वीणा-वादन मे तल्लीन है। वणिक लोग व्यापार कर्म भूलकर वीणा-वादन मे मस्त है। ग्वाल बाल वीणा बजाते हुए अपनी धेनु चराते फिरते है। वीणा के अतिरिक्त वहाँ और कोई किसी विषय का अध्ययन ही नही करता। प्रत्येक व्यक्ति के हाथ मे वीणा है, प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे यह भावना है कि मै ही वीणा बजाकर कुमारी को जीतूंगा और वह मेरा पाणिग्रहण करेगी। वह सारा नगर वीणा की झङ्कार मे ध्वनित हो उठा है। गली गली, घर-घर वीणा की ही झङ्कार सुनाई देती है। विदेशी के लिये उस दृश्य से बढ कर और कोई विचित्र दृश्य और आश्चर्य की बात नही हो सकती। प्रत्येक मास के अन्त मे वीणा-वादिनी के पुजारी उसके सङ्गीत-मन्दिर मे अपनी अपनी वीणा लिये अपनी कला द्वारा देवी को रिझाने के लिये बल्कि उसको जीतने के लिये उपस्थित होते है परन्तु सब के वीणा बजा चुकने पर जब वह अपनी वीणा की झङ्कार करती है तब सब लोग सुध-बुध भूल जाते है और किसी मे कुछ बोलने-चालने सुनने की शक्ति नही रहती। उसके मधुर निनाद मे सब का वीणा-नाद लय हो जाता है और सब मन मारे चुप चाप वहाँ से चले जाते है। कुछ समय उत्साह ठण्डा रहता है परन्तु फिर ज्यो ज्यो उपासना की अवधि समीप आती जाती है त्यो त्यो सब मे उत्साह की एक अपूर्व लहर बढती हुई दृष्टि पडती है। वहाँ एक वीणा-वादन सिखाने वाले सङ्गीताचार्यजी भी है जो बडे बडे राजकुमार आदिको को वीणा सिखा कर अपनी जीविका का निर्वाह करते है। ऐसे ही अनेक वीणा-वादन-भवन आदि वहाँ स्थापित है जहाँ नित्य यही स्वाग होता है परन्तु अभी सफलता किसी को नही मिली। वहाँ का भाव, वहाँ का दृश्य

विश्व भर मे विचित्र है। श्रीमान् को सुनाने के लिये मेरे पास इससे अधिक विचित्र समाचार नही हैं"।

उस सार्थवाह से विदा हो कर कुमार राजभवन को लौटे। परन्तु उस की बात का कुमार के हृदय पर इतना गाढ प्रभाव पडा कि वे उसे भुला न सके। बल्कि उसकी इस बात ने उनके हृदय को कुडलपुर जा कर कुमारी को जीतने के लिये महा उत्सुक किया। उनकी उत्सुकता प्रतिपल बढती ही गई। जब वे अपनी उत्सुकता को किसी प्रकार न दबा सके तब उन्होने अपने इष्टदेव नव पद मन्त्र का ध्यान किया। कुछ काल ध्यान करने पर उनके सम्मुख सिद्ध चक्रपद के अधिष्ठाता श्रीविमलेश्वर देव एक दिव्य ज्योति विशिष्ट हार हाथ मे लिये प्रकट हुए और कुमार से बोले—

"कुमार! आपकी इच्छानुसार मै यह दिव्य कण्ठमाल लाया हूँ इसे ग्रहण कीजिए और वक्ष स्थल पर धारण कीजिए। इसमे चार दिव्य गुण है। पहला तो यह कि इसे धारण करके जिस प्रकार का रूप आप जिसे चाहे दिखा सकते है। दूसरा यह कि पलक मारते ही इच्छित स्थान पर पहुँच सकते है। तीसरा यह कि जिस कला मे चाहे इसे धारण कर निपुणता प्राप्त कर सकते है। चौथा यह कि इसे जल मे धो कर जल के छींटे देने से विषाक्त व्यक्ति का विष दूर हो सकता है। यह आपकी नवपद इष्ट सिद्धि के कारण आपको प्रदान करता हूँ। नवपद प्रभु की साधना करने से कोई वस्तु अप्राप्य नही रह जाती। सब प्रकार की सिद्धिया उसके करतलगत होती है। और भी जब आप चाहे मुझे स्मरण करे मैं सब प्रकार की सहायता को सदा तत्पर रहूँगा"।

इतना कह कर देव अन्तर्हित हो गये। श्रीपाल कुमार ने सहर्ष हार को वक्षस्थल पर धारण किया।

रात्रि मे स्त्रियो को कुमार ने वह सब विचित्र वृत्तान्त सुनाया और जाने की अनुमति मागी। फिर प्रातःकाल शौच आदि से निवृत्त होकर कुमार ध्यानावस्थित होकर बैठ रहे और कुडलपुर पहुँचने की इच्छा की। तत्क्षण वे किसी दैवी शक्ति द्वारा अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दिये गये। कुमार ने जब नेत्र खोले तो अपने को कुडलपुर नगर के बाहर सदर फाटक के सामने पाया। वहाँ कुमार ने इच्छा की कि मेरा रूप एक महाकुरूप बौने के रूप मे परिवर्त्तित हो जाय। अस्तु ऐसा ही हुआ। वे एक नाटे कद के लम्बे दात वाले, तोबे से सिर वाले, छोटी छोटी आखो वाले, ढोल जैसे पेट वाले, पतली पतली भुजा तथा टागो वाले मकडी के पजो जैसे हाथ पांव वाले काले कुरूप बौने बन गये, तब उन्होंने नगर प्रवेश किया। नगर के लोगो के लिये वह एक मनोरञ्जन की सामग्री होगये। झुण्ड के झुण्ड लोग उनके पीछे पीछे दौडने लगे। मार्ग मे श्रीपाल को यह देख कर बडा ही कौतूहल हुआ कि कोई व्यक्ति ऐसा न था जिसके हाथ मे वीणा न हो, यहाँ तक कि नगर के मुख्य द्वार-रक्षक के हाथ भी वीणा से खाली न थे। अस्तु इसी प्रकार देखते भालते अन्त मे वे सङ्गीताचार्य जी के सङ्गीतालय मे पहुँच गये। वहाँ अनेक राजकुमार और रईस लोग वीणा हाथ मे लिये बजाने का अभ्यास कर रहे थे। बौने को देख कर सब वीणा का ध्यान छोड कर उधर को झुक पडे। कुबडे से अनेक प्रकार की हँसी करने लगे। एक ने पूछा 'कहिये कूबड जी क्या आप भी वीणा द्वारा कुमारी को रिझाएँगे'। एक बोला 'कहिए श्रीमान् आप यहां किसका सन्मान बढाने आये हैं'। इसी प्रकार सब उससे हँसी करने

लगे। कुमार ने तो हास्य-कौतुक के लिए ऐसा छद्म रूप धारण ही किया था। सब को हँस हँस कर उछल उछल कर उत्तर देने लगे "मै ऐसी वीणा बजाना जानता हूं कि कुमारी तो क्या नारद भी जो गायनावतार है सुनकर मूर्छित हो जायँ"। इसी प्रकार हँसते हँसाते वे आचार्य्य महोदय के पास पहुँचे, और उनसे वीणा-वादन-शिक्षा की प्रार्थना करने लगे। उन्होने प्रथम तो उसकी बात पर केवल हँस दिया और दूसरी ओर ध्यान देकर कार्य्य करने लगे। परन्तु कुबडे के एक रत्न-खचित अलङ्कार भेट करने पर उन्होने उसका बडा स्वागत सम्मान किया और अपनी निज की वीणा उसे बजाने के लिये देकर आदरपूर्वक उसके ग्राम स्वर आदि से परिचय कराने लगे। शीघ्र ही कूबड महाशय ने उसे उलट पलट कर तोड ताडकर रखदी। उसके इस कर्म्म पर क्रोध करने के स्थान मे आचार्य महोदय ने उसको बताते हुए जरा मुस्कदा दिये और तुरन्त ही दूसरी वीणा दी। इसी प्रकार श्रीपाल मास के अन्त की प्रतीक्षा मे उस कुबड़े के रूप मे हँसते हँसाते हुए सङ्गीताचार्य जी के पास रहे।

अन्त मे अवधि आने पर सङ्गीत-सभा के मासिक अधिवेशन की तैयारी होने लगी। दूर दूर देश के वीणाकार आने लगे चारो ओर मानो धूम सी मच गई, सब अपने अपने अभ्यास की पुनरावृत्ति करने लगे। अन्त मे सभा का दिन आ पहुँचा।

एक अत्यन्त विशाल भवन मे सङ्गीत सभा की कार्य्यवाही आरम्भ हुई। भवन के मध्य भाग मे एक अतीव सुन्दर रङ्ग-मण्डप बनाया गया। उसके चारो ओर सर्व साधारण के बैठने के लिये अनेक प्रकार के आसन रक्खे गये। धीरे धीरे सभा-मण्डप वीणाकारो से खचाखच भर गया। ऊपर रङ्ग मण्डप मे महाराजा मकरकेतु अपने स्थान पर आकर बैठ गये, तथा कुमारी भी

सङ्गीत की देवी के समान रङ्ग मण्डप मे अपनी वीणा लिये आ विराजी। उधर सभा-भवन के द्वार पर हमारे कूबड़ जी को द्वार रक्षक ने रोक रक्खा था। उनका रूप देख देख वह हँसता और उनको वृथा भीतर जाकर हँसी बनने मे रोकता। अन्त मे जब सभा भवन खूब भर गया तब कूबड ने एक बहुमूल्य आभूषण उसकी भी भेट किया, साथ ही फौरन उसको अन्दर जाने की आज्ञा मिल गई। तब वह कूदता फादता, लोगो को हँसाता कुमारी के समीप ही पहुँच गया। वहा पहुँच कर कूबड रूपधारी कुमार श्रीपाल ने अपने कुछ रूप मे एक विशिष्ट परिवर्तन किया अर्थात सर्व साधारण को तो उनका वही बौने का रूप दृष्टिगत होता परन्तु कुमारी उनको वास्तविक रूप मे देखती थी। उनकी अद्भुत रूप छटा देखकर कुमारी हृदय थाम कर रह गई। सोचने लगी यदि यह अपूर्व रूपवान पुरुष मुझे न जीत सका तो यह प्रतिज्ञा मेरे लिये शत्रु होगी, क्योकि इसी के कारण मै निस्सङ्कोच होकर अपनी मनोकाक्षा पूर्ण न कर सकूगी। इसी प्रकार वह कुमार का रूप-सुधा-रसपान करती हुई सोच रही थी। कुमार ने भी यह भाव ताड लिया और सन्तुष्ट होकर वहॉ की कार्यवाही की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय मे जब सभा भवन पूर्ण रूप से भर गया तब महाराज ने प्रत्येक वीणा-कार को आगे आ आकर अपने वादन-कौशल का परिचय देने और अपने अपने भाग्य की परीक्षा करने को कहा। एक एक करके सबने रङ्ग मडप मे जाकर अपनी अपनी वीणा बजाई। एक से एक बढ़ कर अलंकार ध्वनि, मूर्छना आदि उत्पन्न करने लगे। एक से एक मधुर स्वर बजाते, झङ्कार उत्पन्न करते थे और फिर आ आकर अपने स्थान पर बैठ जाते। अन्त मे कूबड़सिह से वीणा बजाने के लिये कहा गया। परन्तु उन्होंने कहा कि कुमारी के पश्चात्

मैं वीणा बजाऊँगा। तब कुमारी ने वीणा हाथ मे ली। एक झङ्कार करके वीणा-वादन आरम्भ किया। अहा! क्या मधुर स्वर थे मानो अमृत का झरना झरता हो। सुनने वाले उन्मत्त हो उठे, झूमने लगे। केवल कूबड़ ही अचल की भाति स्थिर भाव से बैठा रहा मानो कुमारी के वीणा-वादन को मनन करता हो। अन्तु इसी प्रकार कुछ समय वीणा बजाकर कुमारी ने उसे रख दिया। चारो ओर से 'वाह् वाह्' की ध्वनि आने लगी। बड़े बडे कुशल वीणा-कार भी झेप से गये। आज भी सब की पराजय हुई। वीणा-वादन मे कुमारी को कोई न पा सका। तब कूबड रूपो कुमार श्रीपाल उठे। कुमारी का हृदयस्पन्दित होने लगा कि कही ये भी इसी प्रकार असफल हुए तो मेरा जीवन ही निष्फल हो जायगा। उसने उनकी सम्मान सूचना के लिए उन्हे अपनी वीणा दी। परन्तु उन्होने उसमे अनेक प्रकार के दोषो की उद्भावना करके अपनी कला कुशलता का परिचय दिया। अन्त मे उन्होने उसे बजाना आरम्भ किया। पहले मधुर स्वरो से मनोग्राही झङ्कार पैदा की फिर दिव्य गुण विशिष्ट कण्ठमाल के प्रभाव से उन्होंने ऐसी वीणा बजाई कि समा बध गया। उसमे उन्होने वह दिव्यनाद वह मधुरझङ्कार वह सरस स्वरालङ्कार पैदा किए कि प्रत्यक्ष ही सङ्गीत का स्वरूपाभास होने लगा। जान पडता था मानो स्वर्ग का कोई दिव्य वाद्यझंकृत हो रहा है। वह अपूर्व मनोहारिता, वह कर्ण माधुरी, वह वादन कुशलता अप्रतिम थी। श्रीपाल जिस रस को बजाते लोग मानो उसी मे उन्मत्त हो उठते। सुधा की धारा ने मानो सब को आप्लावित कर दिया। स्वय कुमारी उनके वादन कौशल पर मुग्ध हो गई। मुग्ध होकर शीश धुनने लगी और उसे शीघ्र ही अपनी प्रेमा-कांक्षा सफल होती दीख पड़ी। इतने मे कुमार ने एक ऐसी स्वर-

लहरी का विकास किया कि सारे श्रोताजन सुनते सुनते उसमे तल्लीन होकर मूर्छित से होगये, स्वय कुमारी पर भी एक प्रकार का उन्माद सा छागया। तब कुमार ने किसी का कण्ठा किसी का मुकुट, किसी की मुद्रिका, किसी का कडा, किसी की तलवार, इसी प्रकार सबकी कोई न कोई बहुमूल्य वस्तु ले ली और उनका रङ्गमण्डप मे ढेर लगा दिया। फिर आप उस ढेर के पास बैठकर भीने भीने सरसस्वरो मे वीणा बजाने लगे। शनै शनै सब लोगो को चेत हुआ, और वे श्रीपाल कुमार का यह अद्भुत कौतुक देख बड़े विस्मित हुए। उनके वीणा वादन की सब भूरि भूरि प्रशसा करने लगे। इसी अवसर पर कुमारी ने उठकर कुमार के गले मे वरमाला डालदी और बडे हर्ष मिश्रित प्रेम से कुमार के वामाङ्ग पर जाकर खड़ी होगई।

यह सब तो हुआ परन्तु कुमारी के पिता माता स्वजन बान्धवो को इस बात पर बडा खेद हुआ कि हमारी कुमारी को एक कुरूप एव कूबडे ने जीत लिया। परन्तु कुमार उनके हृदय की बात ताड गये। अस्तु उन्होने अपना वास्तविक रूप प्रगट किया। अर्थात् जिस वास्तविक रूप मे कुमारी उन्हे देखती थी वही रूप सब की दृष्टि पडने लगा। तब उनका जोड़ा ऐसा शोभायमान हुआ मानो चन्द्र देव अपनी प्रियतमा चन्द्रिका के साथ हो। मानो अनङ्ग अपनी प्रियतमा रति के साथ उपस्थित हो। सब लोग इस प्रकार इस योग्य जोडे को देख कर परम सन्तुष्ट हुए और चारो ओर प्रशंसा करने लगे। फिर शुभ अवसर देख कर महाराज मकर केतु ने कुमार के साथ गुण सुन्दरी का विवाह किया। उसमे अनेक प्रकार का सामान यौतुक रूप मे दिया और उन्हे रहने के लिए एक विशाल भवन दिया।

" कुमारी ने उठ कर कुमार के गले में माला डाल दी "

पृ० सं० १८

श्रीपाल कुमार अपनी नवपरिणीता पत्नी गुणसुन्दरी के साथ आनन्द विलास करते हुए वहीं रहने लगे।

(२१)

कंचनपुर का स्वयंवर

एक दिवस कुमार के पास एक विदेशी मिलने आया और कहने लगा —"मान्यवर ! मुझे मालूम हुआ है कि श्रीमान् कोई दिव्य गुण धारी है इसलिए एक नवीन समाचार जो मुझे मार्ग मे ज्ञात हुआ है निवेदन करता हू। यहा से लगभग तीन सौ योजन की दूरी पर कचनपुर नामक एक सुन्दर नगर है। वज्र-सेन नामक राजा वहा शासन करता है। उसकी कंचनमाला नाम की रानी है। उसके चार पुत्र है। चारो पुत्रो के ऊपर एक महा रूप सौन्दर्यमयी त्रैलोक्य सुन्दरी नाम की कन्या है। वह वास्तव मे त्रिलोक मे अद्वितीय सुन्दरी है। रभा, रति, उर्वशी, शची, मेनका आदि तो ब्रह्मा ने केवल उसके बनाने के लिए प्रतिमूर्तिया बनाई थी उनकी तो रचना केवल हाथ अभ्यस्त करने के लिये हुई है। वास्तव मे जो मूर्ति उस कुशल चित्रकार ने अङ्कित की है वह त्रैलोक्य सुन्दरी है। उसकी दूसरी उपमा नही है उसे देख कर जान पडता है कि वह चतुर चतुरानन की रुचिर रचना-चातुरी का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। उसकी रचना मे सौन्दर्य्य की इतिश्री हो गई है। उसकी ऐसी अद्भुत रूप छटा देख कर महाराज वज्रसेन ने स्वयवर द्वारा उसे स्वयं वर चुनने का आदेश दिया है। अस्तु उसके स्वयवर के लिए एक विशाल रङ्गमण्डप तैयार कराया है जिसके बीच मे एक रत्न जडित महा सुन्दर पुतली रक्खी हुई है। और चारो ओर भिन्न देशीय राजे तथा राजकुमारो के बैठने के लिए आसनो की योजना की गई है।

उसके स्वयवर की तिथि आषाढ कृष्णा दोज निश्चित है जो कि कल है। यहा आकर मैंने श्रीमान के अद्भुत रूप गुण की बात सुनी अत चित्त मे हुआ कि चलू महाराज को सूचना दूं कदाचित् किसी विशेष शक्ति द्वारा श्रीमान वहा पहुँच कर उसे प्राप्त कर सके। वह स्त्री रत्न वास्तव मे श्रीमान के प्राप्त करने योग्य है। इसी कारण सेवा मे निवेदन किया"।

इतना कह कर और कुछ इधर उधर की वार्त्तालाप के पश्चात वह आगन्तुक कुमार के पास से चला गया। दूसरे दिन प्रात-काल रानी गुण सुन्दरी को सब वृत्तान्त सुना कर कुमार उस दिव्य हार के द्वारा कचनपुर नगर के बाहर उद्यान मे जा पहुँचे।

वहा जाकर उन्होंने वही कुबडे का रूप बनाया परन्तु इस बार महा कुरूपता धारण की। गधे जैसी लम्बी थूथडी चपटा सिर पिचकी नाक शूकर के समान लम्बे दात मोटा पेट पतले हाथ पाँव इसी प्रकार महा घृणित रूप बना कर वे स्वयंवरमण्डप के द्वार पर पहुँचे। वहाँ द्वारपाल ने अन्दर जाने से रोका परन्तु उसे एक रत्नाभरण देकर सरलता से अन्दर प्रवेश कर गये और सीधे मण्डप के मध्य भाग मे जहाँ वह पुतली थी पहुँच गये और वहीं स्वस्थ होकर बठ गये। उन्हे देख कर अन्य राजा लोग जो चारो ओर ऊँच ऊँचे आसनो पर बड़ी सज धज के साथ बैठे थे ठट्ठा कर हँस पडे और उससे पूछने लगे "कुरूपदास आप इस महा सौन्दर्य ऐश्वर्य और शक्ति शालियो की सभा मे किस दुराशा से चले आये ?"

कूबड रूप कुमार बोले—"आप लोग जिस आशा को लेकर यहाँ आये है वही आशा हमे भी है। आप हमारी आशा को दुराशा क्यो कहते हैं" ?

नृपति गण पेट भर हँस कर बोले—"आपका घृणित रूप देख कर"।

कुमार बोले—"वाह हम तो बड़े सुन्दर है। वह त्रैलोक्य सुन्दरी है। हम त्रैलोक्य सुन्दर। हमारा जोड़ा खूब रहेगा"।

कुमार की इस बात पर सभी लोग खूब हँसे। कोई कोई बोले 'आप कुरूप भी है और मूर्ख भी'। सहसा सब कोलाहल शान्त हो गया। रङ्गमण्डप मे महाराज वज्रसेन आते दीख पड़े धीरे धीरे आकर वे रङ्गमण्डप के मध्य भाग मे पुतली के निकट अपने आसन पर बैठ गये। पीछे अनेक सुन्दर सखियो से परिवेष्ठित कुमारी त्रैलोक्य सुन्दरी आती दीख पडी। अहा! वह वास्तव मे त्रिलोक मे अप्रतिम सुन्दरी थी। पाठक अपने अपने हृदय पटल पर सर्वोत्कृष्ट सर्वाङ्ग पूर्ण सौन्दर्यमयी रूप छटा सम्पन्न लावण्य-वती सुमन से भी सुकोमल, शरद चन्द्रिका से भी निर्मल, दुग्ध फेन से भी उज्ज्वल किसी युवती रमणी का चित्र अङ्कित कीजिए और तब समझ लीजिए कि त्रैलोक्य सुन्दरी भी वैसी ही सौन्दर्यमयी थी। आपके हृदय पट पर जो चित्र अंकित हो उसके भले बुरे के हम उत्तरदायी नहीं। आपकी परिमार्जित वा अपरिमार्जित रुचि होगी। अस्तु

घोर अन्धकारमयी निशान्तार्गत सघन घनघटा मे जिस प्रकार विद्युद्दाम की रेखा दमक उठती है और सर्वत्र प्रकाश हो जाता है इसी प्रकार अपूर्व रूप तेज सौन्दर्य की मूर्ति वह त्रैलोक्य सुन्दरी सभा भवन मे प्रगट हुई। अन्तर केवल इतना ही रहा कि वह विद्युत राशि क्षण क्षण भर मे प्रकाश फैला कर फिर अन्धकार मे लीन हो जाती है परन्तु इस दामिनि की दिव्य दमक से जो प्रकाश सभा भवन मे तथा उसके भीतर बैठे हुए

व्यक्तियों के अन्धकार पूर्ण हृदयो मे छागया वह प्रतिक्षण उज्ज्वलतर हो कर वहा प्रकाशित होता रहा।

कुमार श्रीपाल भी उसका ऐसा अपूर्व रूप देख कर परम प्रसन्न हुए और उस आगन्तुक की बात को सत्यता का अनुभव करने लगे और उन्होने कुमारी को प्रथम दृष्टि मे अपना वास्तविक रूप दिखाने का निश्चय किया। रङ्गभूमि मे पहुँच कुमारी की प्रथम दृष्टि कुमार श्रीपाल पर पडी। उस दिव्यरूप माधुरी को देखते ही कुमारी मुग्ध हो गई। उसने देखा कि वह रूप किसी प्रकार भी उसके उज्ज्वल रूप सौन्दर्य से कम नही है। उसमे मानो एक अपूर्व आकर्षण है जो हृदय को विवश करके अपनी ओर खीचे लेता है। चित्त चाहता है कि उस रूप-सुधा का पान ही किये जाय। कुमारी बार बार कुमार की ओर इसी मुग्ध दशा मे देखने लगी। कुमार भी उसका भाव ताड गये। समझे कि तीर लक्ष्य पर बैठा है। तब उसकी प्रेम परीक्षा भी करनी चाहिये ऐसा विचार कर उन्होने अपनी वही महा कुरूप आकृति कुमारी के सामने प्रगट की। उसे देख कर कुमारी महा खिन्न म्लान और विस्मित हुई। सोचने लगी 'ऐसे त्रिभुवन मोहन रूप मे क्या कभी ऐसा विकार ऐसा परिवर्तन हो सकता है। क्या इस पुरुष रत्न के दो रूप हैं? परन्तु यह तो इसका वास्तविक रूप कदापि नही हो सकता। जिस प्रकार कडवी औषधि का परिणाम मीठा होता है इसी प्रकार इसका यह रूप अवश्य ही उस मीठे रूप की महत्ता स्थापना के लिए है'।

जिस प्रकार जादूगर प्रत्येक खेल मे नजरबन्दी करके वास्तविक रूप को छिपाकर कृत्रिम रूप दिखाता है परन्तु वह कृत्रिम रूप मिथ्या होता है इस प्रकार इसका भी यह रूप अवश्य ही मिथ्या है। कुमारी ऐसा विचार कर रही थी कि प्रतिहारी ने

कुमारी को अपने साथ बढने के लिए कहा।--कुमारी प्रतिहारी के साथ चली। प्रतिहारी प्रत्येक राजा के पास कुमारी को ले जाकर उसका गुण, रूप, कुल, मान, मर्यादा, वय आदि का वर्णन करती। जिस समय वह जिस राजा का गुण वर्णन करने लगती उस समय वह हर्ष से फूल जाता। कोई अकडने लगता कोई खास मठार कर मूंछ उमेठने लगता कोई तनकर बैठ जाता, कोई महा करुणा और प्रेमभावमयी मुखाकृति बना लेता, कोई कुमारी की ओर से मानो उपेक्षा करता है ऐसा भाव बनाता, कोई सापेक्ष दृष्टि से कुमारी की ओर देखता, इसी प्रकार सब कोई अपना अपना नया भाव दिखाते। परन्तु जब कुमारी आगे बढ जाती तब वह महाखिन्न होजाता और निराश होकर अपने दुर्दैव को कोसने लगता। इसी प्रकार कुमारी अपने प्रथम प्रेमपात्र का ध्यान करती हुई सबको अस्वीकार करके अन्त मे रङ्गमण्डप मे पुतली के पास जहा कुमार बैठे थे लौट आई।

जब कुमारी वहा पुतली के पास पहुँची तब विमलेश्वर देव ने पुतली के शरीर मे प्रविष्ट होकर कहा—"हे कुमारी यदि तुम अपना पूर्ण सुख सौभाग्य एव सच्चा जीवनानन्द उपलब्ध करना चाहती हो तो इस कुबडे का वरण करो"।

इतना सुनते ही कुमारी कुबडे की ओर अग्रसर हुई तब कुमार ने अपनी आकृति मे और भी कुरूपता प्रकट की परन्तु कुमारी ने उसका कुछ ध्यान न करके और उन्हे अपना प्रियपति मान कर उनके गले मे वर माला डाल दी।

वरमाला डालते ही कुमार ने कुमारी के प्रति अपना वही वास्तविक रूप प्रकट कर दिया जिसे देखते ही वह परम प्रसन्न हुई और अपना जीवन धन्य मानने लगी।

उधर जब अन्य राजा लोगो ने, सर्वसाधारण ने देखा कि कुमारी ने कुरूप कुबडे के गले मे वरमाला डालदी तब रङ्गमण्डप मे बडा कोलाहल सा मचने लगा। कोई कहता 'इस योवनान्धा ने घोर अनर्थ कर दिया। ऐसे सुन्दर राजपुरुषो को छोड़ कर ऐसे कुरूप कुबड़े को पसन्द किया'। कोई कहने लगा 'इसके गले से वरमाला छीनलो इस ऊँठ के गले मे मोती की माला शोभित नही होती'। कोई कहने लगा 'कुमारी ने ऐसे कुबडे को वरण करके हम सब लोगो का घोर अपमान किया है'। राजा लोगो ने क्रोध पूर्वक कुबड़े से कहा 'अरे कुबडे! तू इस वरमाला को गले से निकालदे, अन्यथा तेरा यह गला ही काट डाला जायगा'।

तब कूबडसिह बोले—"कुमारी ने जब मुझे पसन्द करके मेरा वरण किया है, तब फिर उसकी आशा करना उत्तम पुरुषो का काम नही है। नीति शास्त्र के अनुसार अब वह मेरी धर्म-पत्नी हो चुकी उसकी इच्छा करने मे परस्त्री की इच्छा करने के पाप मे दूषित होते हो। अतएव तुम सबको मेरी तलवार की धार मे स्नान करके इस दोष का प्रायश्चित्त करना चाहिए। उठो अपनी अपनी खड्ग सम्हालो"।

ऐसा कह कर वीर कुमार श्रीपाल ने अपनी खड्ग निकाली और उस कोलाहल समुद्र मे कूद पडे। अहा! क्या अच्छा हस्तलाघव है, कैसा तीव्र असि-सञ्चालन है। सारे राजे लोग जो वहा बैठे शेखी बघार रहे थे क्षणभर मे छिन्न भिन्न हो गये। जो जरा सामने डटे वही आहत हुए। थोडी देर मे मैदान खाली हो गया। तब राजा वज्रसेन ने आकर हाथ जोड कर कुमार से कहा—

'हे महापुरुष आप अपना छद्मवेश त्याग कर प्राकृत रूप दिखाइए क्योकि यह कदापि सम्भव नही हो सकता कि ऐसा

दिव्य व्यक्ति जिसके विषय मे स्वर्ण निर्मित जड़ पुतली बोले और जिसके तेज प्रताप के सामने क्षत्रिय वीरो का समूह क्षणभर मे छिन्न भिन्न हो जाय ऐसा कुरूप और कुबड़ा हो। इसलिये आप इस वेष का परित्याग कीजिए'।

तब कुमार श्रीपाल ने अपना वास्तविक रूप धारण किया जिसे देख कर राजा वज्रसेन और कुमारी की माता आदि सब परम प्रसन्न हुए और अपने तथा अपनी कन्या के भाग्य को सराहने लगे।

फिर शुभ मुहूर्त मे राजा वज्रसेन ने कुमारी त्रैलोक्य सुन्दरी का विवाह कुमार के साथ किया और अनेक प्रकार की धन सम्पत्ति यौतुक मे दान की। उन्होने कुमार तथा कुमारी के निवास के लिये एक विशाल भवन का प्रबन्ध कर दिया। वहा कुमारी नववधू त्रैलोक्य सुन्दरी के साथ सानन्द सुख विलास करते हुए रहने लगे।

(२)

छः समस्या-पूर्तियां

यह नीति का वचन है कि जिस मनुष्य के पाप कर्मों की मात्रा कम होती है वह पहले दु ख और पीछे सुख भोगता है। पूर्व जन्म के क्षुद्र अपराध के कारण श्रीपाल कुमार को अपने बाल जीवन मे कुष्टियो के संसर्ग से कुष्ट रोग से पीडित होने का भीषण क्लेश सहन करना पड़ा। और अन्त मे धवल के हाथो नाना प्रकार के कष्ट भोग ने पडे। परन्तु वे उस क्लेश मे कभी अपने धर्म से, नीति से विचलित न हुए अतएव उनके प्राक्तनकर्म क्षय होगये और उनकी भाग्य लक्ष्मी चमक उठी। वे जहा जाते वही सफल होते। जिस कार्य मे हाथ डालते उसी मे पौबारह

होते। जहा जाते वही नवनिधि बारह सिद्धि आगे चलती। अस्तु त्रैलोक्य सुन्दरी को पाकर कुमार की इच्छा अब और आगे बढने की न थी परन्तु जब भाग्य चमकता है तब बिना बुलाये लक्ष्मी आती है। इसी सिद्धान्त मे श्रीपाल भी स्वेच्छा पूर्ति न कर सके। वे एक दिन राजसभा मे महाराज वज्रसेन के समीप बैठे थे कि इतने मे एक विदेशी दूत ने आकर वहा निवेदन किया—

"हे भगवन ! देश देशो मे भ्रमण करते हुए मेरे देखने मे एक विचित्र बात आई है वह सेवा मे निवेदन करता हू। यहाँ से दूर देश मे दलपत्तन नामक एक नगर है वहाँ धारापाल राजा शासन करता है। उसके चौरासी रानिया है जिन मे गुणमाला पट्टमहारानी है। उसके पाच पुत्र है। और सब से छोटी एक पुत्री है, जिसका नाम शृङ्गार सुन्दरी है। वह सर्वाङ्ग पूर्ण सुन्दरी है और शृङ्गार की पराकाष्ठा है। उसकी पाच सखिया प्राणो से भी प्यारी भुवन-मन-मोहिनी पण्डिता, विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा, और दक्षा नामकी है। कुमारी का तथा उन सब सखियो का परस्पर बडा प्रेम एव साख्य भाव है। जैन धर्म मे उन सब की अपार श्रद्धा है। वे जैन सिद्धान्तो का पालन बडी दृढता से और शुद्ध भावो से करती हैं। उन सब का यह निश्चय है कि हम जैन धर्म मे प्रीति रखने वाले पति का ही वरण करे। क्योकि प्रतिकूल धर्म वाला पति स्वीकार करने से सारा जीवन घोर क्लेश मे व्यतीत होगा। अत अपने भावी पति की परीक्षा के लिये उन छहो ने एक एक समस्या स्थिर की है। जो उन समस्याओ की पूर्ति उनकी रुचि तथा उनके मनोनुकूल कर सकेगा वही उनका पति होगा। इस प्रकार उन्होने उसका धर्म सम्बन्धी भाव रुचि आदि जानने का निश्चय किया है। अब तक अनेक विद्वान्

उनके पास जा जा कर समस्या पूर्तियां कर चुके हैं परन्तु उनके मनोनुकूल पूर्ति कोई आज तक न कर सका। किसी का धर्म और होता है, किसी की रुचि और होती है, कोई किसी सिद्धान्त को मानता है, कोई किसी उद्देश को निर्द्धारित करता है, कोई जीवन का कुछ लक्ष्य बताता है। निदान सभी लोग अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार समस्या पूर्ति करते हैं परन्तु वे सब उनके प्रतिकूल होती हैं। अस्तु जैनधर्म का पक्का अनुयायी उसमे अपार श्रद्धा एव विश्वास रखने वाला पुरुष जैसा वे चाहती है उन्हे आज तक न मिला। सब पूर्तिकार इस बात पर बड़े विस्मित है कि दूसरे के मनोगत भाव किस प्रकार समस्या पूर्ति मे बद्ध करे। अस्तु इन्ही कारणो से वे अब तक अविवाहित हैं और वहा सदैव विद्वानो एव कविवरो का जमघट सा लगा रहता है जो एक दर्शनीय बात है"।

आगन्तुक की यह विचित्र कथा सुनकर कुमार ने महाराज वज्रसेन से वहा जाने की अनुमति मागी और अपने भवन मे आकर उन्होने अपने दिव्यहार के गुणो का स्मरण किया और आख मीच कर दलपत्तन नगर पहुॅचने की इच्छा की। तत्काल ही कुमार ने दलपत्तन के एक सुन्दर रम्य उपवन मे अपने को बैठा पाया।

वहाँ से उठकर कुमार शृङ्गार सुन्दरी के साहित्य भवन मे पहुचे। वहाँ महाराज धनपाल सभासद आदि तथा कुमारी अपनी सखियो सहित बैठी हुई थी। एक सुन्दर तेजस्वी पुरुष को देखकर कुमारी का हृदय स्वयं उस ओर आकर्षित होने लगा। उन्होने अपनी अन्य सखियो से कहा—"आलि ! यदि ऐसा तेज सौन्दर्यधारी व्यक्ति हमारी समस्याओ की अनुकूल पूर्ति कर सके तो हम धन्य होजायँ"।

इतने मे कुमार ने वहां पहुँच कर महाराज आदि को यथा विधि प्रणाम करके कुमारी से अपनी समस्याये कहने को कहा। कुमारी के सकेत करने पर बड़ी सखी पण्डिता ने कुमार से कहा–

पडिता--मेरी समस्या है 'मन वाञ्छित फल होय'।

कुमार ने देखा कि उनके समीप ही एक बड़ा सुन्दर मनुष्य का पुतला बना हुआ है। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा--'पुतले तुम पंडिता की इस समस्या की पूर्ति करो'।

तब पुतले ने पडिता की इस प्रकार समस्या पूर्ति की।

"नव पद अरिहंतादि जो, निज मन धारे कोय।
निश्चय उस नररत्न का, मनवांछित फल होय" ॥

तब दूसरी सखी विचक्षणा ने अपनी समस्या कही—

'तजो अन्य जजाल'

श्रीपाल कुमार का हाथ रक्खा हुआ था अतएव पुतले ने कहा--

"अर्हन्देव, सुसाधुगुरु; दया धर्म सुविशाल।
जपो मन्त्र नवकार नित, तजो अन्य जंजाल"

तीसरी सखी प्रगुणा ने कहा—

'मेरी समस्या है 'लो निज जीवन सार'

पुतली ने कहा—

"पूजो सच्चे देव, गुरु, दो शुभ पात्र विचार
तप संयम उपकार कर, लो निज जीवन सार"

चौथी सखी निपुणा बोली—

'जितना लिखा ललाट'

"दुखित चित्त कर खोलमत, चिन्ता द्वार कपाट
नित उतना ही पायगा, जितना लिखा ललाट"

पाँचवीं सखी दक्षा ने अपनी समस्या कही—

'उसका त्रिभुवन दास'

पुतले ने निम्म प्रकार पूर्ति की

"जिसके पहले कर्म का, रहता नित्य विकास
उसकी शक्ति+सुधी, रमा, उसका त्रिभुवन दास"

पाचो सखिया अपनी अपनी समस्या पर पूर्तियां सुनकर परम प्रसन्न हुई। पाचो की उनकी रुचि के अनुकूल समस्याये हुईं। वे परम सन्तुष्ट होकर अपने सौभाग्य को सराहने लगी। अब कुमारी के हृदय मे बडा स्पन्दन हुआ। सोचने लगी कही मै ही न रह जाऊँ 'हाय जिसकी कामना सब से प्रथम मैंने की वह मुझ से भी पहले औरो का हो गया परन्तु नहीं जब इन्होने इन पांचो की पूर्तिया इस प्रकार एक जड़ पुतले मे करादी तब ये अवश्य ही कोई दिव्य गुणधारी पुरुप है। अवश्य ही मेरी भी मनो कामना सफल होगी'।

कुमार श्रीपाल ने कहा—"कुमारी खडी खडी क्या सोचती हो ? तुम भी नि शङ्क होकर अपनी समस्या कहो यथाशक्ति पूर्ति करने की चेष्टा करूगा"।

यह सुनकर कुमारी ने प्रसन्न होकर कहा—

"मेरी समस्या है 'रवि मे प्रथम प्रकाश'।

सुन कर कुमार ने कहा—"पुतले यही अन्तिम परीक्षा है। ठीक ठीक उत्तर दो"।

+ सुधी=अच्छी बुद्धि। ले०

पुतले ने कहा —

"गये, न जग में यश लिया, किया जन्म फल नाश
जो यश से छिपते, करें, रवि से प्रथम प्रकाश"※

इस प्रकार समस्या पूर्ति होते ही सारी सभा हर्ष की और विस्मय की धारा मे बह गई। चारो ओर से 'वाह वाह' की ध्वनि आने लगी। कुमारी का हृदय आनन्द से नाच उठा। उसने और पाचो सखियों ने कुमार के गले मे सरस सुगन्धित नव कुसुम निर्मित वरमालाये डालदी।

तब महाराज धारापाल ने शुभ मुहूर्त मे कुमारी का उसकी पाचो सखियो सहित बडे आनन्द उत्सव एव समारोह से पाणि-गृहण करा दिया।

(२३)

राधा-वेध-स्वयंवर

इस प्रकार पुतले द्वारा समस्या पूर्ति की बात पर सब को बड़ा भारी विस्मय हुआ और कुमार श्रीपाल को कोई महा पुण्यशाली एव दिव्य पुरुष जानकर अनेक लोग उनके दर्शन के लिए आने लगे।

※ ये समस्यायें तथा पूर्तिया श्री विनय विजय जी कृत रास में प्राकृत मिश्रित गुजराती भाषा में दी हुई हैं। उनका भाव लेकर लेखक ने अपनी भाषा शैली में नये सिर से समस्यायें स्थिर करके पूर्ति की हैं। प्र०

अगभद्र नामक एक परम विद्वान् ब्राह्मण ने भी यह आश्चर्य देखा था। जब श्रीपाल कुमार वैवाहिक क्रिया आदि से निवृत्ति पाकर अपने आराम भवन मे कुमारी प्रमुख छहों स्त्रियो सहित चले गये, तब उसने श्रीपाल कुमार से कहा –

"महाराज ! आपका आश्चर्यकारक चरित्र देखकर मुझे विश्वास होता है कि आप दिव्य पुरुष है। इसलिए आप को एक नवीन घटना सुनाता हू। यहां से कुछ दूरी पर कोल्लागपुर नामका नगर स्थित है। पुरन्दर नाम का राजा वहां का शासन कर्त्ता है। उसकी विजया नाम की परम चतुरा एवं विदुषी रानी है। उसके सात पुत्रो के ऊपर जयसुन्दरी नाम की अति रूप गुणवती एक पुत्री है। राजा ने उस जयसुन्दरी को अनेक प्रकार की कलाओ की शिक्षा दिलाई है। अन्त मे जब वह सब प्रकार निपुण और चौसठ कला कुशल हो गई तब राजा ने उसके शिक्षक पाठक जी से पूछा कि 'महाराज ऐसी अद्वितीय सुन्दरी का ऐसा ही कोई योग्य वर होना चाहिये। कौन इसको ग्रहण करने योग्य है सो कहिये"। तब पाठकजी ने कहा कि—

'राजन् ! मैंने इसे अनेक प्रकार की शिक्षा दी है परन्तु इसे धनुर्वेद की बात सुनने की और जानने की विशेष रुचि है। राधा-वेध नामक धनुर्विद्या की एक उत्कृष्ट कला है उसके विषय मे इसने विशेष जिज्ञासा भी की थी, अस्तु उसका रूप मैंने इसे समझा दिया, तभी से इसने इस बात की प्रतिज्ञा की है कि जो राधा-वेध लक्ष्य का साधन करेगा उसी का मैं वरण करूँगी। अन्य व्यक्ति से कदापि पाणिग्रहण न करूँगी। इस लिये आप स्वयंवर द्वारा राधा-वेध का साधन कराइये। जो राधा-वेध साधन कर सकेगा वही कुमारी का पति होगा'।

पाठक जी की इस बात पर महाराज ने स्वयंवर मण्डप और उसमें राधा-वेध का निर्माण कराया है। उस का रूप इस प्रकार है। स्वयंवर मण्डप के मध्यभाग मे एक स्तम्भ है, उस पर आठ चक्र है। उन चक्रो मे से चार चक्र सीधी और चार चक्र बाईं ओर को घूमते है। प्रत्येक चक्र मे एक एक छिद्र है। उन सब चक्रो के ऊपर एक पुतली लगी हुई है उसी को राधा + बोलते है। स्तम्भ के नीचे गरम तेल से भरा हुआ एक कढाव रक्खा है जिसमे उस सम्पूर्ण दृश्य का प्रतिबिम्ब पडता है। जो कोई राधा-वेध साधन करे वह अधोमुख होकर तेल के कढाव मे उस प्रतिबिम्ब को देख कर ऊपर को बाण चलावे। वह बाण उस समय चलाना चाहिये कि जब वे आठो छिद्र एक सीध मे हो और वह बाण आठो छिद्रो मे से होकर राधा की बाईं आंख का भेदन करे। तब वह राधा वेध साधन हो। अब तक अनेक धनुर्वेद-विशारदो ने इस का प्रयत्न किया परन्तु कोई लक्ष्य-साधन न कर सका, किसी का शर-सन्धान ठीक न हुआ। आप जैसे महामहिमामय पुरुष अवश्य ही उस लक्ष्य का साधन कर सकेंगे ऐसा मुझे विश्वास होता है।

यह सुनकर श्रीपाल कुमार ने कोल्लागपुर जाने का निश्चय किया और दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज धारापाल तथा शृङ्गार सुन्दरी आदि से विदा होकर कुमार ने कोल्लागपुर के लिए प्रस्थान किया।

निश्चित मार्ग तय करने पर कुमार कोल्लागपुर नगर मे पहुँचे। वहा वे कुमारी जयसुन्दरी के स्वयंवर मण्डप मे गये जहाँ महाराज पुरन्दर तथा अनेक वीर धनुर्वेदज्ञ बैठे हुए थे। उन्होंने कुमार का स्वागत किया। शिष्टाचार के पश्चात् कुमार ने अपने

+ एक पुतली। ले०

श्रीपाल

" कुमार ने इष्टदेव का ध्यान करके अधोमुख होकर, तेल मे राधा-वेध का प्रतिबिम्ब देखते हुए शर-सन्धान किया "

पृ० स० ११३

इष्ट देव नवपद मन्त्र का ध्यान करके अधोमुख होकर तेल मे राधा-बेध का प्रतिबिम्ब देखते हुए शर-सन्धान किया। शर आठो चक्रो के छिद्रो को पार करता हुआ राधा की बाई आख मे ठीक जाकर बैठा और राधा-बेध का साधन पूर्ण हुआ। राजा तथा सारी सभा बडी प्रसन्न हुई और कुमारी जयसुन्दरी ने परम हर्षित होकर कुमार के गले मे वरमाला डालदी।

फिर शुभ मुहूर्त मे कुमारी जयसुन्दरी से श्रीपाल कुमार का विवाह कार्य सम्पन्न हुआ।

पुरन्दर महाराज ने श्रीपाल के रहने के लिए एक उत्तम सुसज्जित आवास भवन का अलग प्रबन्ध कर दिया। कुमार वहीं नवपत्नी जयसुन्दरी के साथ रहने लगे।

(२४)

स्वदेश की ओर

एक दिन कोल्लागपुर में महाराज वसुपाल के प्रेषित किये हुए राज कर्म्मचारी कुमार के पास आये और उनको महाराज वसुपाल के बुलाने का सन्देश सुनाया। कुमार ने भी अधिक समय हुआ जानकर प्रस्थान करने का निश्चय किया और जहाँ जहाँ अपनी परिणीता पत्नियां थीं वहा सर्वत्र अपने आदमी भेज कर उन्हे बुला भेजा। कुछ ही समय मे वे सब रानिया अर्थात् गुणसुन्दरी, त्रैलोक्यसुन्दरी और अपनी सखियो सहित शृङ्गार सुन्दरी आदि सम्बन्धियो सहित तथा अपनी अपनी यौतुक दत्त सेना दास दासी अपार धन-सामग्री सहित श्रीपाल कुमार के पास आ उपस्थित हुईं।

सब के एकत्रित होजाने पर कुमार ने महाराज पुरन्दर से विदा लेकर वहाँ से प्रस्थान किया। मार्ग मे सेना का इतना बड़ा

समूह जाते हुए देख लोग विचार करते थे कि कोई राजा किसी राजा पर कुपित होकर चढाई करने के लिए जारहा है। उस चतुरङ्गिनी की चाल देखते ही बनती थी मानो कोई शूरवीरता का समुद्र लहरे मारे बढ़ा चला आता है। इसी प्रकार श्रीपाल देश विदेश व्यतिक्रम करते हुए ठाणापुर मे जा पहुँचे। वहाँ महाराज वसुपाल ने कुमार का बडा स्वागत सम्मन किया तथा अपने भानजे और जामातृ श्रीपाल की ऐसी ऋद्धि समृद्धि देख कर वे आनन्द पारावार मे मग्न हो गये। अब उन्हे श्रीपाल का कौमार्य्य भाव उचित प्रतीत न हुआ। अतएव उन्होने कुमार श्रीपाल को राजपद से अभिषिक्त किया और राजपद के अनुसार श्रीपाल ने छत्र चामर न्यायदण्ड आदि राज चिह्नो को धारण किया। अब वे कुमार श्रीपाल से राजा श्रीपाल कहलाने लगे।

इसी आनन्दोत्सव मे कुछ समय व्यतीत हुआ। तब कुमार को माता तथा मयनासुन्दरी की स्मृति विकल करने लगी। अन्त मे एक दिन महाराज वसुपाल से विदा लेकर श्रीपाल राजा ने ठाणापुरी से भी अपनी सातो रानियो तथा पांचो शृङ्गार सुन्दरी की सखियाँ इस प्रकार बारह स्त्रियो के साथ प्रस्थान का प्रबन्ध किया। महाराज वसुपाल ने भी अपनी सैना का बडा भाग श्रीपाल को यौतुक मे दिया तथा अनेक प्रकार के रसद के सामान का उनके साथ प्रबन्ध किया। फिर शोक-विह्वल हृदय से उन्होने राजा श्रीपाल को विदा किया। इस प्रकार अपार सैना समूह के साथ राजा श्रीपाल ने प्रस्थान किया। आगे पीछे कुमार की चतुरङ्गिणी सेना तथा बीच मे कुमार और उनकी रानियो के डोले चले। चारो ओर अङ्ग रक्षको की सेना थी। भिन्न भिन्न कर्मचारीगण भिन्न भिन्न प्रकार का प्रबन्ध भार लिये

हुए साथ जाने लगे। इस प्रकार राजा श्रीपाल अपनी अपार सेना लेकर समुद्र की भाँति उमड़ चले। मार्ग मे जो राज्य अथवा नगर पड़ते वहाँ के राजा अथवा अधिकारी वर्ग राजा श्रीपाल के पास अनेक प्रकार की भेट ले ले कर आते और राजा श्रीपाल के प्रति पूजा एवं श्रद्धा का भाव प्रकट करते। उनकी अपार सेना को देख कर बड़े बड़े वीर और योद्धा राजाओ के भी हृदय दहल जाते, वे दौडे आकर अनेक प्रकार की भेटें उपस्थित करते और उनका प्रभुत्व मान कर उनके कृपापात्र बनना चाहते।

इसी प्रकार बहुत सा मार्ग तय करके और बहुत से राजाओ से मित्रता स्थापित करते हुए श्रीपाल राजा सोपारकपुर नगर मे पहुँचे। वहा उनके डेरे आदि लगाये गये और सभी कर्मचारी अपने अपने प्रबन्ध मे इधर उधर दौड धूप करने लगे। वह नगर एक प्रतापशाली राजा के शासन मे था। राजा श्रीपाल के के समीप किसी प्रकार की भेट आदि लेकर उपस्थित न हुआ यह देख कर राजा श्रीपाल ने अपने प्रधान आमात्य से पूछा—

"ज्ञात होता है इस नगर का शासक बडा अभिमानी है अपने राजमद के सामने सभी शक्तियो को तुच्छ समझता है"।

इस पर प्रधान बोले—"नही स्वामिन्! महसेन नामक राजा यहाँ के अधिपति है वे शक्तिशाली अवश्य ही है परन्तु अभिमान का उनमे लेश भी नही है। स्वामिन्! मैने सुना है कि उनकी पुत्री तिलक सुन्दरी को जो रूप और गुण की खान है दीर्घपृष्ठ नामक सर्प ने काट लिया है। अनेक प्रकार के औषधोपचार एव मन्त्रादिक के प्रयोग तथा तान्त्रिको के झाड़े ने भी कुछ प्रभाव नही दिखाया और कोई उसकी विषम मूर्च्छा को दूर करने में समर्थ नही हुआ। अन्ततोगत्वा आज उसकी मृत्यु होगई और उसे अब वे स्मशान-भूमि की ओर ले जा रहे हैं। सारे राजपरिवार

एवं नगर की प्रजा मे आज हाहाकार मचा हुआ है। कुमारी के रूप गुण की बडी प्रसिद्धि थी इसलिये सभी उसकी अकाल मृत्यु पर दुःखित है। इसी कारण राजा आपकी अगवानी एव भेट के लिये नही आसके"।

श्रीपाल ने कहा—"प्रधान जी आप शीघ्रता से जाकर कुमारी के शव को भस्म होने से रोक रखिए उनसे कहिए कि जब तक मैं न देखलूँ तब तक वे उसके शरीर को भस्म न करे तब तक मैं भी आता हूँ"।

प्रधान तुरन्त ही आज्ञापालनार्थ चल दिये। राजा श्रीपाल ने भी अपना अश्व मँगाया और कुछ अङ्ग रक्षको को साथ लेकर उस स्थल पर जा पहुँचे जहाँ राजा राजपरिवार के अन्य लोग तथा प्रजाजन का एक बडा समूह कुमारी के शव को स्मशान-भूमि की ओर ले जा रहा था। श्रीपाल ने वहाँ पहुँच कर उन्हे शव का नीचे उतार ने का अनुरोध किया और कहा कि मूर्च्छित व्यक्ति का दाहकर्म करना उचित नही है। फिर उन्होंने सब के देखते देखते अपने दिव्यहार को जल मे धोडाला और उस जल को कुमारी के ऊपर छिडक दिया। कुछ ही क्षणो मे कुमारी ने आँखे खोल दी और अगड़ाई लेती हुई उठ बैठी। महराज महसेन तथा सारी जनता आश्चर्य-पारावार मे मग्न हो गई। चारो ओर श्रीपाल राजा की प्रशसा के पुल बँध गये।

तब महसेन राजा ने अपनी कुमारी तिलकसुन्दरी को महाबली राजा श्रीपाल का परिचय दिया और कहा—

"पुत्रि! तुम्हारे यही जीवन-रक्षक है। सब प्रकार निराश होकर हम जब तुम्हे स्मशान-भूमि को ले जा रहे थे तब ठीक समय पर आकर इन्होने तुम्हारी प्राण-रक्षा की अब हमारी

" और उस जल को कुमारी के ऊपर छिड़क दिया "

पृ० सं० ११६

सम्मति म तुम्हारे जीवन, प्राण शरीर सब पर इन्ही का न्यायोचित अधिकार है। हमारी इच्छा है कि तुम इन्ही महानुभाव का वरण करो"।

यह सब सुनकर कुमारी ने अपार कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से कुमार की ओर देखा। किन्तु कुमारी की चितवन मे केवल कृतज्ञता ही न थी बल्कि अपार सरलता और स्नेह स्निग्धता थी। वह अज्ञातयौवना थी अत उसने किसी प्रकार का चाञ्चल्य अथवा सौन्दर्याभिमान का भाव-प्रकाश नही किया। उसने राजा श्रीपाल को सरल अनुरागमयी दृष्टि से देखा जिससे प्रकट होता था कि वह उनपर सर्वस्व निछावर करने को तैयार है। उसकी अनुराग पूर्ण दृष्टि ने कह दिया कि वह सब प्रकार श्रीपाल कुमार के अधिकार मे ही है। पिताजी की बात का यद्यपि उसने कोई प्रत्यक्ष उत्तर न दिया परन्तु उसके भाव मे प्रकट होगया कि वह उसको मनसा वाचा कर्मणा सब प्रकार से स्वीकार है। वह नत-मस्तक होकर खडी रही।

तब महाराज महसेन ने बडी धूमधाम से राजा श्रीपाल के साथ कुमारी तिलक सुन्दरी का पाणिग्रहण कराया। इस योग्य जोडे की सब ने भूरि भूरि प्रशसा की। राजा ने अनेक प्रकार की धनसम्पत्ति दास दासी नट नटी तथा चतुरङ्गिणी सेना श्रीपाल को यौतुक मे दी।

इस प्रकार कुमार की उस अतुल ऋद्धि की और भी वृद्धि हुई।

यद्यपि राजा महसेन ने कुमार से वहाँ कुछ समय रहने का बहुत अनुरोध किया तथापि स्वदेश पहुँचने की शीघ्रता के कारण राजा श्रीपाल ने क्षमायाचना पूर्वक प्रस्थान की आज्ञा माँगी।

तब कलेजे पर पत्थर रख कर राजा ने पुत्री तथा आमात्
को विदा किया।

अब घनघोर घटा के समान यह सैन्यदल उमडता हुआ
जाने लगा। जिस राज्य से होकर राजा श्रीपाल निकलते वहीं का
राजा अपनी सीमापर कुमार का स्वागत करता और नजर भेट
आदि देकर कुमार की अधीनता स्वीकार करता।

इस प्रकार महाराष्ट्र, सौराष्ट्र मेवाड़ तथा लाट देशाधिपतियो
से भेट पाते हुए कुमार अन्त मे सकुशल मालवदेश
में आपहुँचे।

यद्यपि कुमार अनेक रानियो एव सेवक सेविकाओ से घिरे
हुए थे परन्तु चिर-वियोगिनी मयनासुन्दरी की प्रेम-स्मृति उन्हे
चञ्चल एवं विह्वल किये हुए थी। माता से भी मिलने की उत्कण्ठा
कुछ कम न थी। यही मन होता था कि किसी प्रकार उडकर
जा मिले किन्तु धैर्यशील व्यक्ति अवश्यम्भावना के लिये उतावले
नही होते। अत उस सुखमय स्नेह सम्मिलन की मधुर कल्पना
में सन्तोष रखना उन्होने श्रेयस्कर समझा। अस्तु।

टिड्डीदल के समान, महाप्रलय के मेघ दल के समान
श्रीपाल महाराज के असख्य सैन्यदल ने चूडाकार से उज्जयिनी
नगरी को आवृत्त कर लिया। श्रीपाल के असंख्य सैन्य समुद्र मे
उज्जयिनी केवल एक छोटा सा द्वीप जान पडने लगी।

(२५)

अप्रत्याशित-मिलन

रात्रि का अन्धकार घनीभूत होता जा रहा है। एक प्रहर
निशा व्यतीत हो चुकी है। उज्जयिनी नगरी मे सब लोग सध्या

काल से ही पर-चक्र भय से घरो में घुस चुके हैं। अत चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ है। ऐसे समय मे एक महा उज्वल एव मूल्यवान वेष भूषाच्छादित व्यक्ति राज-भवन के अन्तरंग भाग मे एक कमरे के द्वार कपाटो पर कान लगाये हुए कुछ सुन रहा है। आइए पाठक ! हम उस आगन्तुक व्यक्ति को बाहर ही छोड़ कर अन्दर चल कर देखे कि उसमे कौन व्यक्ति है और वे क्या वार्तालाप कर रहे है जिसे वह बाहर ठहर कर इतने मनो-योग पूर्वक सुन रहा है।

अहा कमरे मे तो एक पलग पर श्रीपाल महाराज की माता तकिये के सहारे लेटी हुई हैं तथा उनकी पुत्र वधू मयना उनके चरण दबा रही है। तब अवश्य ही आगन्तुक व्यक्ति श्रीपाल होगे। अस्तु अब इनकी बात-चीत ध्यान से सुनिए।

कुमार की माता ने कहा—

"प्यारी मयने ! चिरकाल से प्रिय पुत्र के मिलने की हृदय मे उत्कण्ठा लगी हुई थी अधिक काल बीत जाने से आशा होती थी कि अब प्यारे श्रीपाल को शीघ्र देखूगी इतने मे न जाने कहा से यह भयङ्कर तूफान उठ आया। सुनते हैं कि अपार सेना ने नगरी को घेर लिया है। अब न जाने क्या होगा ? जो हो प्रभू से याचना है कि मेरा श्रीपाल जहाँ हो सकुशल रहे"।

मयना०-"माता जी आप वृथा शोक मत कीजिए—केवल नवपद भगवान् का स्मरण कीजिए। अनेक आधि, व्याधि, भय, रोग, शोक उनके स्मरण मात्र से नष्ट हो जाते हैं। मैं आप से आज की एक महामोदमयी घटना कहती हूँ। इस नगरी के घिर जाने के भय और आशंका मिश्रित भाव से मैं जिनेश्वर देव की सान्ध्योपासना कर रही थी उस समय सहसा मेरे हृदय मे

अपूर्व उल्लास एवं आनन्द की भावना जागृत हुई। भय शोक खेद सब क्षण भर में नष्ट हो गये। रोमाञ्च हो आया, वामाङ्ग फड़कने लगा तथा मुझे अमृत क्रिया* प्राप्त हुई। ऐसे आपद् काल में ऐसे भाव का तथा शुभशकुन का होना प्रकट करता है कि अवश्य ही कोई प्रिय घटना घटित होने वाली है। तथा किसी प्रिय का सम्मिलन होने वाला है। इस कारण मुझे तो भय के स्थान पर हर्ष हो रहा है"।

श्री० मा०--"शुभगे ! तुम अमृत वर्षिणी हो। तुम्हारी रसना में अमृत है। भगवान तुम्हारे वचन और भावों को शीघ्र सत्य करें"।

इतने में बाहर से आवाज आई--

"माता द्वार खोलिए"

महाविस्मय रोमाञ्च एवं हर्षकारी भाव से उठ कर--झपट कर श्रीपाल की माता ने किवाड़ खोल दिये, तथा श्रीपाल ने प्रवेश करके माता के चरणों में मस्तक रख दिया। मयना मुग्ध एवं प्रेम-रस-सुधासिक्त दृष्टि से एक टक अपने जीवन धन को निहारती रह गई। पाठको ! इस समय के हर्ष और उल्लास का आप ही अनुमान कर लीजिए। कहना न होगा कि राजा श्रीपाल

---

* अमृत क्रिया = सह जो भाव धर्मोंहि, शुद्ध चन्दन गन्धवत्।
एतद्गर्भमनुष्ठान, ममृत सप्रचक्षते ॥ १ ॥
शास्त्रार्थ लो चनं सम्यक् प्रणिधान च कर्मणि।
कालाद्यग विपर्यासोऽ, मृतानुष्ठान लक्षणम् ॥२॥ ले०

" श्रीपाल ने प्रवेश करके माता को नमस्कार किया "

पृ० सं० १२०

माता को कन्धे पर तथा मयना को अङ्क भर कर देवदत्त हार के प्रभाव से रात्रि मे ही अपने सैन्य शिविरो मे ले आये।

\+ \+ \+ \+ \+

दूत के मुख से यह सुन कर कि "आपको हमारे स्वामी ने कंधे पर कुलाडा तथा दातों मे तृण दबाये हुए बुलाया है' राजा प्रजापाल क्रोध से भभक उठे और लडने को तैयार हो गये। परन्तु मन्त्रियो ने राजा को समझाया प्रधान मन्त्री ने कहा--

"महाराज ! जो राजा भला बुरा अवसर देख कर कार्य्य नही करता उसका नाश अवश्यम्भावी है। अपने से अधिक बल वाले से लडने पर अवश्य ही पराजय निश्चित है। दीपक यद्यपि खद्योत के लिये बहुत है परन्तु सूर्य्य के सामने उसका प्रकाश फीका है। दीपक यद्यपि अन्धकार का नाश कर सकता है परन्तु अन्धड मे वह नही ठहर सकता। अतएव अवश्य ही उचितानुचित समय विचार कर कार्य्य करना राज्यनीति है"। इसी प्रकार मन्त्रिगण चिरकाल तक राजा प्रजापाल को ऊँच नीच समझाते रहे। तब राजा खिन्न हो कर इनके कथनानुसार कंधे पर कुल्हाडा तथा दातो मे तृण रख कर चिप्रा नदी की ओर जहां श्रीपाल के शिविर थे चले। श्रीपाल ने दूर से ही राजा प्रजापाल को आते देखा। देख कर वे राजा प्रजापाल की ओर चले और दूर से ही उन्हे प्रणाम किया और उनका स्वागत करके अपने सुसज्जित डेरे मे ला बिठाया।

श्रीपाल राजा का इस प्रकार का प्रज्वलित प्रताप देख कर राजा प्रजापाल महा हर्षान्वित हो कर बोले—

"महाभाग ! आपके पुण्य प्रभाव को देख कर मै अपने को महा भाग्यशाली समझता हू। आशा है मेरे द्वारा आपका यदि पहले कोई अपमान वा अनादर हुआ हो तो क्षमा करे"।

श्रीपाल बोले—

"स्वामी ! आप बार बार ऐसा कर मुझे लज्जित न करें यद्यपि यह मेरी धृष्टता एव उच्छृङ्खलता है कि मैंने आपको इस प्रकार आने के लिये वाध्य किया। इसका कारण यह था कि आपकी जैन धर्म एव नवपद माहात्म्य के ऊपर पूर्ण श्रद्धा हो जिसके कारण आज मुझे यह दिन देखना नसीब हुआ। परन्तु यह अपना कुव्यवहार मुझे बहुत अनुचित प्रतीत हुआ। आप मुझे इसके लिए क्षमा कीजिये हम सब आपके अनुगामी हैं।"

मयना ने कहा—

"पिताजी ! यह सब कर्म्मों की विचित्र गति है। कर्म की अपार एव अकथनीय महिमा है। इसकी गति विधि अलक्ष्य एवं अगोचर है। आपने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पालिया है।"

तब श्रीपाल ने अपनी नाट्य मण्डलियो को अपने नाट्य-कला-कौशल-प्रदर्शन की आज्ञा दी। किन्तु मुख्य नाट्य-मण्डली की जो प्रधान अभिनेत्री थी उसने नाट्याभिनय करना अस्वीकार कर दिया। उस समय उस मण्डली के मुखिया ने उन पर बहुत जोर दिया परन्तु उसने एक न माना। येन केन प्रकारेण उसे अभिनय के लिए खडा भी किया गया तो वह रङ्गमञ्च पर आकर रोने लगी और उसने बार बार यही दोहा कहना आरम्भ किया—

कहँ मालव ? कहँ शंखपुर ? कहं बब्बर ? कहँ नृत्य ?
मदमर्दित सुर सुन्दरी, नचत लखत विधि कृत्य

यह दोहा सुनकर राजा प्रजापाल रूपसुन्दरी तथा अन्य सब महा विस्मित होकर आंख फाड फाड़ कर उस अभिनेत्री की ओर देखने लगे। सोचने लगे क्या यह वही हमारी सुरसुन्दरी है

" तब सुर सुन्दरी कहने लगी "

पृ० सं० १२३

जिसका पाणिग्रहण बब्बर देश के राजकुमार ने किया था। इतने ही मे वह नटी रोती रोती राजा प्रजापाल के चरणो पर गिर पडी राजा ने पुत्री को पहचान कर गले से लगा लिया और पुका फाड़ कर रो पड़े सुरसुन्दरी की माता भी पुत्री को अङ्क भर कर रोने लगी। उस समय सब उपस्थित जनो के नेत्र सजल हो गये। उल्लास के प्रकाश पर मानो विषाद की श्याम घटा छागई। बडा करुणा जनक दृश्य होगया।

अन्त मे सब के शान्त होने पर राजा प्रजापाल ने सुरसुन्दरी से उसकी ऐसी दशा होने का कारण पूछा। तब सुर सुन्दरी कहने लगी--

"यह सब मेरे घोर अभिमान का फल है। यह मुझे उस तिरस्कार भाव का फल मिला जो मयना के प्रति मेरे हृदय मे उत्पन्न हुआ। मुझे पीछे जान पड़ा कि वास्तव मे ससार मे कर्म ही प्रधान है। विवाह के पश्चात् मैंने पति के साथ श्वसुरालय को प्रस्थान किया। जब हम अपनी राजधानी शखपुरी के बाहर पहुँचे तब उस दिन शुभ दिवस न होने से वधू प्रवेश अमाङ्गलिक माना गया और हमे दूसरे दिन की प्रतीक्षा मे नगर के बाहर ही डेरे इत्यादिको मे ठहराया गया। अपने नगर मे पहुँच जाने से सब सिपाही लोग भी आज्ञा ले ले कर अपने अपने घर चले गये। थोड़े से नये सिपाही हमारी रक्षा के लिए वहाँ रह गये। अर्द्ध रात्रि मे डाकुओ के एक बहुत बडे गिरोह ने हम पर छापा मारा। पति देव भी मुझे अकेली छोड़ कर जान लेकर भाग गये डाकू लोगो ने लड़ भिड़ कर सब माल छीन लिया और साथ ही मुझे भी ले भागे। नैपाल देश मे जाकर उन डाकुओ ने मुझे एक व्यापारी सार्थवाह के हाथ बेच दिया। उस सार्थवाह ने बब्बर-कुल देश में एक वेश्या को मुझे बेच दिया। उसने अनेक प्रकार

नृत्य तथा सङ्गीत कला की मुझे शिक्षा दी । बब्बरकुल देशाधिपति बड़े सङ्गीत तथा नाट्य प्रिय राजा थे। उन्होंने मेरी सङ्गीत और नृत्य कला की प्रशंसा सुन कर वेश्या से मुझे खरीद लिया और अपनी नाट्य मण्डली मे भरती कर लिया पश्चात् अपनी पुत्री मदन मेना के यौतुक मे मुझे महाराज श्रीपाल को दे दिया। उनके सामने मैंने अनेक प्रकार नाट्याभिनय किया परन्तु आज सब कुटम्बियो को एकत्रित देख कर मेरा चित्त अत्यन्त विषादयुक्त हो गया। परन्तु अब सब का वही प्रेम भाव प्राप्त कर मुझे अत्यन्त हर्ष होता है। विवाह समय जो मैंने अपनी महत्ता का हर्ष और मान तथा मयना की क्षुद्रता के प्रति घृणा एव तिरस्कार का भाव प्रकट किया उसका मुझे मयना के पति की दासता एव सेवा करने मे यथेष्ट फल मिल गया। अब मुझे अपने पूर्व कृत कृत्य पर अतीव पाश्चात्ताप होता है आशा है मेरी प्रिय बहिन मयना मुझे उदार हृदय मे क्षमा प्रदान करेगी।"

यह सुनकर मयना ने उठकर सुरसुन्दरी को हृदय से लगा लिया और फूट फूट कर रोने लगी । सबके शान्त होने पर राजा श्रीपाल ने सुरसुन्दरी के पति अरिदमन को बुला भेजा। आने पर श्रीपाल ने सुरसुन्दरी का और उनका पुनर्मिलन कराया और अनेक प्रकार के रत्न वाहन आदि सामग्री देकर उनको बिदा किया।

(२६)

पूर्ववर्ती हितैषी गण

राजा श्रीपाल के पुनरागमन की खबर दूर दूर तक फैल गई। चारो दिशाओ से पुराने सेवक और हितैषी गण आ आकर महाराज श्रीपाल से मिलने लगे। राजा प्रजापाल की प्रजा ने भी खूब उत्सव समारोह मनाया। छोटो की तो बात ही क्या बडे बड़े

प्रभावशाली राजा तथा श्रीमन्त आ आकर श्रीपाल महाराज को भेट आदि देने लगे। सब की यही इच्छा थी कि महाराज के हम पूर्ण प्रेम पात्र एव कृपापात्र बने। पुण्यशाली पुरुष मे प्रभाव तथा आकर्षण होता है सब उसकी कृप दृष्टि चाहते है। यही बात राजा श्रीपाल पर घटित होती थी।

यो तो वहा नित्य ही आने जाने वालो का जमघट लगा रहता था परन्तु उनमे श्रीपाल के पिता के समकालीन मतिसागर प्रधान का आना और सातसौ कुष्टियो का जो अच्छे होकर अपने अपने घर चले गये थे हम उल्लेख किये बिना नही रह सकते।

महाराज श्रीपाल ने मतिसागर मन्त्री को फिर अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया तथा उन गत विकार सातसौ कुष्टियो को उमराव तथा राणा आदि की पदविया देकर अपने सेनानायको का पद प्रदान किया। पश्चात् मामा के पक्ष के मौसाल पक्ष आदि के अनेक व्यक्तियो से श्रीपाल ने सप्रेम भेट की। इसी प्रकार सस्नेह सम्मेलन आदि मे सानन्द चिरकाल व्यतीत होगया।

(७७)

रण-भेरी का नाद

उचित अवसर देख कर एक दिन मतिसागर प्रधान ने महाराज श्रीपाल से निवेदन किया

"प्रभु! संसार मे कोई अजर अमर नही है परन्तु लोकोक्ति मे वही अमर कहा जाता है जिसका यश अमर होता है। आपने भी अपने बाहुबल द्वारा अक्षय कीर्ति सञ्चित की है। दूर दूर देशो मे आपके वीर्य्य बल का डका बज रहा है। आपकी रण-भेरी का नाद सुनकर बडे बडे वीर कॉप उठते हैं। दूर दूर तक आपके सन्मुख रण मे ठहरने वाला कदाचित न मिलेगा। इस

प्रकार आपका यश ससार रूपी नील गगन मे पूर्णिमा के सुधा-धवल उज्ज्वल चन्द्र के समान चमक कर पीयूष वर्षा कर रहा है। परन्तु जिस प्रकार चन्द्र मे एक कलङ्क की कालिमा है उसी प्रकार आपके यश-चन्द्र मे भी एक कालिमा का चिह्न अवशेष है उसे दूर करना होगा। दूर करने के लिये बद्धपरिकर होने मे अब विलम्ब करना उचित नही। वह कलङ्क अपने पिता के राज्य का उद्धार न करना है। सब से पहले अब इस कालिमा को धो डालिये। आज्ञा दीजिए कि रण-भेरी का नाद हो तथा सेना सुसज्जित होजाय। कल हम युद्ध के लिये प्रस्थान करेगे।"

श्रीपाल महाराज ने ध्यानपूर्वक मन्त्रिवर की सम्मति को सुना और फिर उन्ही के आदेशानुसार रण-यात्रा की तैयारी की आज्ञा दी।

\+ \+ \+ \+

चम्पापुरी राज्य की सीमा पर भीषण और अजेय सैन्यदल के साथ अनेक सामन्त श्रीमन्त एव अधीनस्थ राजाओ से परिवेष्ठित होकर राजा श्रीपाल ने युद्ध शिविर स्थापित किया। जहाँ तक दृष्टि दौड़ती, दूर दूर तक शिविर दृष्टि पडता। चीटी दल की तरह सैन्यदल उमड़ा पडता था। बीच मे महाराज श्रीपाल का कारचोबी खेमा बहार दिखला रहा था।

उसी खेमे मे राजा श्रीपाल प्रधान मन्त्री मतिसागर एव अन्य प्रमुख सेना नायको से युद्ध विषयक परामर्श कर रहे हैं—

श्रीपाल बोले—

"प्रधान जी! हमारी सम्मति है कि पहले चाचाजी को दूत भेज कर शामदाम दण्ड भेद आदि नीतियों को प्रयोग मे लाना

चाहियें। यदि वे किसी प्रकार भी न माने तब युद्ध आरम्भ करना चाहिये अन्यथा वृथा नर नाश कराने से क्या लाभ" ?

यह सम्मति सब को स्वीकृत हुई। चतुरमुख नामक दूत कार्य के योग्य ठहराया गया। अत उसी को राजा अजित सेन के पास भेजा गया।

दूत ने अजित सेन के पास जाकर मृदुभाषा मे कहा— "राजन्! आपके भतीजे श्रीपाल अब इस राज्य-भार के वहन करने की योग्यता सम्पादन कर चुके है अनेक राजे महाराजे उनके अनुगामी हैं। उनकी आज्ञा शिरोधार्य करने मे बडे बडे वीर मामन्त अपना गौरव समझते है इस कारण राज राजेश्वर पूजित श्रीपाल महाराज ने मुझे भेजा है कि आप उन की पैत्रिक समृद्धि लौटादे"।

अजितसेन ने कहा—

"दूत! श्रीपाल ने यह राज्य धरोहर करके नही दिया है जो वह इसे अपनी थाथी समझ कर उलटा मागता है"।

दूतने कुछ अप्रिय भाषा मे कहा—

"वह हो सकता है महाराज! परन्तु आप यह समझ रखिए कि बिना श्रम की उपार्जित ऋद्धि सहज मे ही नहीं पचा करती। आपने जिस बालक को राज्य से भागते सुना था श्रीपाल कुमार अब वह बालक नही है। आप उनकी किसी बात मे भी तुलना नही कर सकते अन्धकार और तेज मे, रजनी और दिवस मे, काञ्चन और रत्न मे, शृगाल और सिह मे तथा कायरता और वीरता मे जितना तारतम्य है उससे कही अधिक भेद आप मे और श्रीपाल मे है इसलिये यही समुचित प्रतीत होता है कि आप

उनका यह राज्य सादर उन्हे लौटा दे और वृथा अपमान से बचे रहें।"

अजितसेन ने क्रुद्ध हो कर कहा—

"रे दूत ! तू केवल सन्देश वाहक है तेरा कार्य्य सन्देश देने का है, उपदेश देने का नहीं क्या तू समझता है कि हम तेरे जैसे क्षुद्र व्यक्तियो की धमकी मे आ जाएगे ? श्रीपाल से कह देना कि यहाँ गीदड भवकी से काम नहीं चलेगा। हमने उसके भुजबल द्वारा इस राज्य को नहीं प्राप्त किया है।"

दूत ने तब कठोर भाषा मे कहा--

"राजन ! 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' यह उक्ति किसी कवि ने सत्य ही कही है। जान पडता है कि आपके नाश का समय समीप आ पहुचा है तभी आप मे उचितानुचित विवेचना बुद्धि भी क्षीण हो चुकी है। अजेय सेना समूह लेकर श्रीपाल महाराज ने आपका प्रदेश घेर लिया है यदि आप मे शक्ति हो तो तलवार ले कर रणक्षेत्र मे आइये। परन्तु समझ रखिये कि आप भीषण रक्तपात के तथा भयङ्कर नर नाश के वृथा दोषी होना चाहते है यह राज्य अब मधुर मोदक नहीं रहा है जो वामन पेट मे पच जायगा।"

राजा अजितसेन ने कहा--

"रे पामर ! तू दूत है यही समझ कर छोड देता हूँ। जा श्रीपाल से कह दे कि रणसङ्घर्ष के लिये तैयार रहे। मैं तेरे पीछे ही पीछे आता हूँ।"

दूतने महाराज श्रीपाल के पास जा कर सब वृत्तान्त शब्दश कह सुनाया। सहसा रण भेरी का नाद चारो दिशाओ में गूँज उठा--

" श्रीपाल का अपने चाचा अजितसेन से युद्ध " —पृ० स० १२१

(२८)

रण-संघर्ष

युद्ध भूमि मे दोनों पक्ष का अपार सेना दल उमड़ उठा है। राजा श्रीपाल और अजित सेन हस्तियो पर सवार होकर अपने अपने सैन्यदल का सञ्चालन कर रहे है। तोमर, पलाश, गदा, खड्ग, चक्र, बरछे, धनुष, बाण आदि विविध प्रकार के आयुधो को हाथ मे लिये दोनो ओर की सेना युद्ध तत्पर देख पड़ती है।

वह देखिये! रणवाद्य बजने लगा, कैसी वीररस पूर्ण ध्वनि है? कायर भी इस वीर रसमयी स्वर लहरी मे तल्लीन होकर झूमने लगे, सबके हाथो के शस्त्र चमक उठे। नेत्र आरक्त हो गये। भाटो ने कड़खा आरम्भ किया। सेनापतियो ने युद्धारम्भ का सकेत किया। दोनो दल भिड गये। मारकाट धर पकड़ का बाजार गरम हुआ, चारो तरफ़ रक्त की नदिया बहने लगी जिनमे रुण्ड-मुण्ड तैरने लगे। कही वीर सैनिक का एक हाथ कट गया है वह एक हाथ से ही लड़ रहा है। कही रक्त का फव्वारा छूट रहा है, कही कोई अकेला वीर अनेक सैनिको से लड़ कर अपूर्व युद्ध कौशल प्रकट रहा है। कही किसी वीर का मुण्ड कट गया है केवल रुण्ड ही लड़ रहा है। वह देखिये यह भीषण गर्जना हुई अग्नियन्त्रो से भीषण गोले छूटने लगे। उभय पक्ष के सहस्रो सैनिक काम आने लगे। फिर भी युद्ध की भीषणता कम नही हुई। इसी प्रकार कुछ काल युद्ध होने पर राजा श्रीपाल की सैना के पैर उखडने लगे, तब स्वयं श्रीपाल महाराज ने युद्धक्षेत्र मे अपना हस्तकौशल प्रकट किया। अविराम शर वर्षा द्वारा उन्होने अजितसेन की सेना को ढक दिया सहस्रो हताहतो का ऊपर नीचे ढेर लग गया। अजितसेन की शेष सेना ने पीठ दिखाई। यह दशा

देखकर अजितसेन बहुत घबराए परन्तु फिर धैर्य धारण कर ओज पूर्ण शब्दों में अपने सैनिकों को सम्बोधन करके कहने लगे— "वीरो! धिक्कार है तुम्हारे जीवन और शौर्य्य को जो तुम रण में आज शत्रु को पीठ दिखाना चाहते हो। देखो यह रणभूमि स्वर्ग पथ है इस स्वर्ग मार्ग को त्यागकर रौरव नरक के पथ पर जाने का विचार क्यो करते हो? आओ हम सब कायरता को छोड़कर वीरता से या तो इस रणभूमि मे जूझ मरे या विजय लक्ष्मी प्राप्त कर अक्षय कीर्ति सञ्चित करे। आओ वीरो एक साथ मिलकर इस युद्धस्थली का शत्रुओ के रक्त से तर्पण करे।"

ऐसा कहकर राजा अजित सेन बड़ी तत्परता से युद्ध करने लगे बहुत से सैनिक भी प्राणपण लगाकर लड़ने लगे। उधर श्रीपाल राजा के सात सौ सेना नायको ने* जब राजा अजितसेन को इस प्रकार भयंकरता से लड़ते देखा तब चारो ओर से आकर उनके हाथी को घेर लिया और अनेक प्रकार महाराज श्रीपाल की अधीनता स्वीकार करने को समझाने लगे परन्तु अजितसेन ने उनकी बातों का उत्तर अस्त्र प्रहारो से ही दिया, तब उन्होने राजा अजितसेन का पैर पकड़ कर हाथी के हौदे से नीचे खींच लिया और बन्धन मे करके राजा श्रीपाल की विजय ध्वजा ऊपर उठा दी। यह देख कर अजितसेन की शेष सेना ने शस्त्रास्त्र रख दिये और श्रीपाल महाराज का अधीनत्व स्वीकार किया।

(२६)

युद्ध समाप्ति

राजा श्रीपाल चाचा अजितसेन को अपने सम्मुख बन्धन मे देखकर आसन से उठ खड़े हुए और उन्हें बन्धन मुक्त करके बोले:—

---

* जो पहले सातसौ कुष्ठी थे। —लेखक।

"चाचा जी ! उत्थान और पतन प्रकृति का अखण्डनीय नियम है इसलिये आप पश्चात्ताप न करें। मैं केवल अपना पैत्रिक राज्य ही चाहता था जो मुझे प्राप्त होगया। अब आप अपने पहले राज्य में स्वाधीन भाव से जाकर शासन कर सकते हैं। मैं आपको अधिक कष्ट देना नही चाहता।"

राजा अजितसेन इस पर सिर नीचा करके मौन हो रहे। मनमे विचार करने लगे। धिक्कार है मुझे जिसने वृद्ध होकर भी राज्य माया के लोभ मे पड़कर एक बालक के साथ घोर अन्याय किया और धन्य है इस श्रीपाल को जिसने बालक होकर भी अपने घोर शत्रु को उदार भाव से क्षमा प्रदान किया। अहो! मैंने इसके साथ महा अनर्थ किया। शैशवकाल मे इसे मारने के लिये मैंने षड्यन्त्र रचा। भाग जाने पर भी इसका पीछा किया। पश्चात् दूत से सब बाते सुनकर भी मैंने अहङ्कार का त्याग न किया और अन्त मे श्रीपाल का बध करके उसकी पैत्रिक संपत्ति को सदा के लिये हड़प कर जाने को मैंने भीषण युद्ध किया परंतु धन्य है श्रीपाल का अपूर्व औदार्य्य प्रेम और सरल सहिष्णु स्वभाव कि मेरे प्रति आदरभाव मे उसने कुछ भी कमी नहीं की और देखते ही मुझे बन्धन मुक्त कर दिया। इसके जैसा पुण्य-शाली और मेरे जैसा क्षुद्र पापी दूसरा कोई व्यक्ति न होगा। मेरे लिये घोर नरक का द्वार खुला हुआ है। ससार त्यागकर जिनेश्वर कथित प्रवृज्या ग्रहण करके ही मै अब इस घोर पातक से मुक्त हो सकता हूं। इसके अतिरिक्त मेरे लिये और कोई रक्षा का उपाय नही है।

ऐसा विचार करते करते राजा अजितसेन के हृदय में अपने कर्मों पर घोर पश्चात्ताप का भाव उत्पन्न हुआ। ज्यों ज्यों

पश्चात्ताप होता गया त्यो त्यो वैराग्यभाव बढ़ता रहा इस प्रकार अनेक गुण स्थानो का आरोहण करते हुए वे छठे गुण स्थान पर पहुँच गये। तब उन्होने वहीं चारित्र ग्रहण किया, इस प्रकार छठे सातवें गुण स्थान के अधिकारी राजा अजितसेन पञ्च समिति तीनगुप्ति और आठ प्रवचना मात्रा युक्त मुनिराज हुए।

गुण दोष के आशु परीक्षक राजा श्रीपाल ने अपने चाचा की यह स्थिति देखते ही नतमस्तक होकर उनके चरणो मे वन्दना की और अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे—

"भगवन ! आपने ऐसे समय चारित्र ग्रहण कर जो आदर्श ससार के सम्मुख उपस्थित किया है वह ससार के इतिहास मे अमिट अक्षरो से अङ्कित रहेगा। आपने इतनी शीघ्रता से जो राग द्वेष के भाव को भुला कर समताभाव धारण किया वह अनुकरणीय एव त्रिलोकाभिनन्दनीय है। धन्य है आपको तथा आपके पुण्यशालित्व एवं त्याग को। हमारे जैसे क्षुद्र पापलिप्त सासारिक जीव भी ऐसे उदार त्यागी महात्माओ के दर्शन पाकर कृतकृत्य होजाते है। आपने जिस प्रथा का अनुसरण किया है वह महापातकी मनुष्य का भी क्षणमात्र मे उद्धार कर देने वाली है। हे नाथ ! मै आपके इस पवित्र भाव और भूषा का हृदय से अभिनन्दन करता हू और आपको शतश वन्दना करता हूं।"

मुनि धर्मलाभ देकर अन्यत्र विहार कर गये।

महाराज श्रीपाल ने तब राजर्षि अजितसेन के पुत्र गजगति को जो युद्ध स्थल मे उपस्थित थे राजा अजितसेन के राज्य का अधिकारी नियुक्त करके राज्य तिलक किया।

(३०)

चम्पानगरी-प्रवेश

अन्तिम-छटा ।

तत्कालीन चम्पानगरी की शोभा का वर्णन करने की शक्ति हमारी मूक लेखनी मे नहीं है । क्योंकि महाकवि तुलसीदास जी के शब्दो मे —

"गिरा अनयन नयन बिनु बानी" वाली उक्ति के कारण उस समय का हर्ष पारावार कथनातीत है । हॉ कल्पना द्वारा हम अवश्य ही नगरी की उस समय की साज सज्जा, रङ्ग राग, आनन्द उल्लास और आमोद प्रमोद का कुछ आभास करा सकते है परन्तु हम ऐसे विषय को बढाकर वर्णन करना केवल पृष्ठपेषण मात्र समझते है । वह विषय कवियो के लिये छोड़ते है । जो पाठक ऐसे वर्णनो से प्रेम रखते हो वे कृपा करके श्रीपालरास के देखने का कष्ट करे । हम तो यही लिख देना पर्याप्त समझते है कि बडी धूमधाम तथा हर्षोत्सव सहित महाराज श्रीपाल का नगर प्रवेश हुआ । पश्चात् राज्यतिलकोत्सव हुआ । बडे बडे अधीनस्थ राजा, अमीर, सरदार, प्रधान, सेठ साहूकार राज्य कर्मचारी आदिको ने भेट दीं । तब महाराज ने मयनासुन्दरी को पट्ट महारानी का पद दिया । बुद्धिनिधान मतिसागर प्रधान मन्त्री तथा धवल सेठ के साथ से भिन्न हुए वे तीन परामर्श दाता साधारण मन्त्री नियुक्त किये गये ।

इन सब प्रबन्ध कार्य्यों से निवृत्त होने पर महाराज श्रीपाल ने कोशम्बी नगरी स धवल सेठ के पुत्र विमल सेठ को जो एक सरल निर्मल तथा शुद्ध हृदय का व्यक्ति था बुला कर अपनी

चम्पानगरी का नगर सेठ नियत किया। महाराज श्रीपाल ने अपनी नगरी के सब दुःखित तथा आर्त्त जनों के दुःख एवं शोक को दूर करने का अति उत्तम प्रबन्ध किया। कुछ ही काल में महाराज श्रीपाल की उत्तम शासन व्यवस्था के कारण अखिल राज्य में राम राज्य छागया। चारो दिशाओ मे श्रीपाल महाराज का यशोगान होने लगा।

महाराज श्रीपाल ने अपने पितृ-राज्य का उद्धार किया और सारे राज्य मे शान्ति स्थापित की। इस प्रकार मैनासुन्दरी पट्टरानी तथा अन्य आठो रानियो सहित श्रीपाल राजा अपना धर्म्म कर्म्म पालन करते हुए सानन्द राज्य करने लगे।

\+ + + +

यह श्रीपाल की कथा अब समाप्त हो चुकी है परिशिष्ट मे हम संक्षेप रूप मे श्रीपाल के कुछ पूर्वभव का वर्णन करेंगे। यहाँ इतना लिख कर समाप्त करते हैं कि श्रीपाल अपनी वृद्धामाता की सेवा सुश्रूषा का सब प्रकार ध्यान रखते जो इस समय अपने पति के राज्य को पुत्र के द्वारा सुशासित होते देख कर परम सन्तुष्ट थी तथा राजा प्रजापाल भी श्रीपाल से अत्यन्त आदर एव प्रेम के भाव से व्यवहार करते थे और सब प्रकार कर्म सिद्धान्त को सर्वोपरि माननीय समझने लगे थे। इस प्रकार सब अपना काल सुख शान्ति एवं प्रेम के साथ व्यतीत करने लगे।

॥ इति ॥

परिशिष्ट

चिरकाल पश्चात् अवधिज्ञान प्राप्त श्री राजर्षि अजितसेन घूमते फिरते चम्पा नगरी मे पधारे। उनका शुभागमन सुनकर महाराज श्रीपाल भी अनेक परिजन रानियों आदि सहित वन्दना निमित्त राजर्षि के समीप गये।

राजर्षि ने अनेक प्रकार से धर्मोपदेश दिया तथा जैन के सूक्ष्म तत्त्वो का विवेचन एव प्रतिपादन किया। धर्मोपदेशामृत प्रवाह के रुकने पर श्रीपाल ने पूछा—

"भगवन्! मैंने पूर्व जन्म मे कौन से पाप किये थे जिन से मुझे शैशव काल मे राज्य छोड़ना पड़ा, कुष्ठी होना पड़ा, जल मे गिरना पड़ा, तथा डोम आदि होने की लाञ्छना सहन करनी पड़ी तथा किस पुण्य कर्म के प्रभाव से मैं सर्वत्र सफल काम एवं ऋद्धि समृद्धि का अधिकारी होता रहा हूं। इनका कारण बता कर मेरा सशय निवारण कीजिए"।

मुनिबोले—

"राजन् संसार मे कर्म प्रधान माना जाता है। सब जीव कर्मों के अधीन हैं। जो जैसा कर्म करता है वह अवश्य ही उसे भोगना होता है। मैं तुम्हारा पूर्वभव का वर्णन करता हूं। इसी भरतक्षेत्र के हिरण्यपुर नगर मे, श्रीकान्त नाम का राजा था जिसकी महा गुणशील निधान श्रीमती नाम की रानी थी। वह राजा बड़ा आखेट-प्रेमी था, उसके पास सातसौ पुरुष महा उद्दंड और उद्दण्ड नौकर थे। वे सब राजा को पाप कर्म की ओर प्रवृत्त करते रहते थे। रानी श्रीमती राजा को हिंसा आदि न करने के लिये बहुत समझाती परन्तु वे उद्दंड राजा का सब ज्ञान भुलाकर उसे हिंसा मार्ग पर प्रवृत्त करते थे।

एक दिन राजा सातसौ उल्लठों सहित आखेट को गये। बन मे एक मुनि जो कुष्ठ रोगी थे दृष्टि पड़े। सातसौ उल्लठ उन्हे खूब छेडने और दु ख देने लगे और कुष्टी कुष्टी कह कर अपमान करने लगे। राजा यह सब देख कर खूब हँसे और मनमे प्रसन्न होने लगे। फिर एक दिन राजा एक हिरन के पीछे पीछे भागते एक नदी के कूल पर पहुँचे। वहा एक मुनि दृष्टि पडे। उन्हे कान पकड कर राजा ने नदी मे डाल दिया, परन्तु फिर दया करके नदी से बाहर भी निकाल लिया। घर आकर राजा ने रानी से मुनि के उपसर्ग का सब वृत्तान्त कहा। रानी ने राजा को अनेक प्रकार से समझाया और कहा कि आपने यह घोर पाप कर्म किया है दूसरे को व्यथा पहुँचा कर आप भी नरक गामी बनते है। तब राजा ने भविष्य मे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की। फिर एक दिन राजा ने एक मुनि को मार्ग मे जाते देखकर रानी से की हुई प्रतिज्ञा भुलाकर, अपने सातसौ उल्लठो को उसे गला पकड कर नगर से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। उन्होने उसे गला पकड कर बहु अपमान सहित नगर से बाहर निकाल दिया। यह सब पाप कौतुक देखकर रानी ने खीझ कर राजा से कहा-"आप यह सब क्या पापकर्म करते है। न अपनी प्रतिज्ञा का विचार रखते है न न्याय अन्याय का विचार करते हैं, धिक्कार है आप की इस कुबुद्धि पर! आप क्यो ऐसा पाप कर्म करके नरकगामी होना चाहते है"। रानी से ऐसी भर्त्सना सुनकर राजा को बहुत पाश्चात्ताप हुआ और उस मुनि को बुलाकर राजा ने क्षमा मागी। रानी ने मुनिराज से राजा का प्रायश्चित्त कराने को कहा। मुनि ने कहा-"कृतकर्म का फल भोग अनिवार्य है परन्तु मै तुम्हारे आग्रह से कुछ प्रायश्चित्त बताता हूं। नवपद मन्त्र के आराधना तथा पूजा प्रभावना आदि करने से घोर पातक नष्ट हो जाते हैं इसलिये तुम भी नवपद का आराधन करो"। यह कह

कर मुनि चले गये। तब राजा ने मुनिरोक्त नवपद का सत्य हृदय से आराधन किया। उस समय रानी ने अपनी आठो सखियों सहित नवपद आराधन का अनुमोदन कि। तथा उन सातसौ उल्लंठो ने भी राजा के साथ अनुमोदन किया। फिर कुछ काल पश्चात् राजा ने सातसौ उल्लंठो सहित सिंह राजा के ग्राम का ध्वंस किया और उसकी गायो का झुण्ड हर लाया। तब सिंह राजा ने उन सातसौ को मार कर गाये वापस ली। वे सब सातसौ उल्लठ मर कर क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हुए परन्तु मुनि को उपसर्ग करने के कारण वे सब कुष्टी हुए। राजा श्रीकान्त अपने सिद्ध चक्राराधन आदि पुण्य प्रभाव से मर कर तुम्हारे श्रीपाल के रूप मे उत्पन्न हुए। तुम्हारी रानी श्रीमती मर कर मयना सुन्दरी के रूप मे उत्पन्न हुई उसकी आठो सखिया तुम्हारी अन्य आठो रानियो के रूप मे उत्पन्न हुईं। तुमने कुष्टरोग का जल मे डूबने का, डोम के लाञ्छन का तथा राज्य से निकलने का जो दु ख पाया वह सब मुनि की आशातना करने का फल था। परन्तु सिद्ध चक्र आराधन के फल रूप तुम सदा सफल मनोरथ एव ऋद्धि समृद्धि के स्वामी होते रहे। सातसौ उल्लठो ने राजा के साथ धर्मानुमोदन किया था, इस कारण उन्होने कुष्ट रोग से निवृत होकर राणा का पद प्राप्त किया। सिंह राजा ने शस्त्राघात द्वारा सातसौ व्यक्तियो का बध किया था इस पाप कर्म से डर कर उसने दीक्षा ग्रहण करके एक मास का अनशन व्रत * किया और मरकर मेरे अजितसेन के रूप मे उत्पन्न हुआ। तुमने श्रीकान्त के भव मे मेरे राज्य का ध्वस किया इस कारण इस भव मे मैने तुम्हारा राज्यापहरण किया। पूर्व भव मे मैने सातसौ उल्लंठो का वध किया था, इस कारण उन्ही

---

* अन्न जल का सर्वथा परित्याग करना। —लेखक।

सब के हाथ से मैं बन्दी हुआ। पूर्व जन्म में मैंने दीक्षा ग्रहण की थी इससे इस जन्म में भी मुझे दीक्षा की भावना उदय हुई। पूर्व जन्म में दीक्षा काल में ज्ञान-सञ्चय करने के कारण इस जन्म मे मुझे जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ जिसके द्वारा पूर्व जन्म की बात जानकर मैंने संयम ग्रहण किया और अवधिज्ञान प्राप्त किया।

इस प्रकार हम तुम सब अपने अपने कर्मों द्वारा भिन्न फल भोग के अधिकारी हुए इस कारण ससार मे मनुष्य को उत्तमोत्तम धर्म कर्म करके जीवन यापन करना चाहिये।

श्रीपाल ने हाथ जोड़ कर कहा—

"नाथ! मेरी अभी तो ऐसी परिस्थिति नहीं है कि मै संयम ग्रहण कर सकू इसलिये ऐसा क्या कर्तव्य है जिससे मैं ससार मे रहते हुए भी धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकू"।

मुनिराज ने कहा—

"राजन्! तुम्हारा हृदय अत्यन्त उदार एवं सरल है तथा तुम महा पुण्यशाली जीव हो। नवपद आराधन का तुम्हे प्रेम है उसी आराधना मे तुम अपना कालक्षेप करो, एवं श्रावक धर्म के मुख्य बारह व्रतादिक अङ्गीकार करो। तुम को सोच करने की कोई आवश्यकता नही, इससे नवे भव मे तुम केवल ज्ञान प्राप्त कर के मोक्ष पद प्राप्त करोगे"।

पश्चात् मुनिराज अन्यत्र विहार कर गये। उनके प्रस्थान पश्चात् मयनासुन्दरी के परामर्श से श्रीपाल महाराज ने नवपद की बड़े धूमधाम एवं उत्सव समारोह पूर्वक अट्ठाई महोत्सव द्वारा आराधना की। इस प्रकार सुख शान्ति एवं धर्म कर्मों मे अपना शेष काल व्यतीत करते रहे।

समाप्त।

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२३	नहीं	न हो
४	६	मन्त्रा	मन्त्री
११	१८	उचिनानु-चित	उचितानु-चित
१४	१६	चाटुकों	चाटुकारों
२६	६	का का	का
३४	५	नहीं	नहीं कि
३८	१८	टम	टस
४३	४	उत्तङ्ग	उत्तुङ्ग
४३	११	बाहन	वाहन
५३	१	पूजाथ गइ	पूजार्थ गई
५३	२६	प्रनुचित	अनुचित
५५	२२	लग	लगे
५६	५	ाकया	किया
५८	२६	ि मित्त	निमित्त
५६	६	जे	जो
६८	३	अशुधि	अशुचि
६६	२२	कोंकण	कोंकण
८१	५	अ एव	अतएव
८६	२	भग	भग की चेष्टा
८८	१६	मनोकामा	मनोज्वाला
६५	१४	मुस्कदा	मुस्करा
६६	४	बनने	कराने
१००	१६	बठ	बैठ
१०३	५	पल	फूल
१०४	३	योवनान्धा	यौवनान्धा
१०५	१६	छ.	छै
१०६	६	निम्म	निम्न
१०६	१०	समस्यायें	पूर्तियां
११३	२४	मदाराज	महाराज
११४	६	सममन	सम्मान
११६	७	उससे	उसके
११६	१४	शव का	शव को
११७	६	स्निउधता	स्निग्धता
१२२	३	उच्छृङ्ख-लता	उच्छृङ्खलता
१२३	१	बब्बरदेश	शंखपुर
१२५	४	कृप	कृपा
१३४	७	महाराज	महाराज
१३६	१०	धोर	घोर